अनुसंधान

मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसूत्त, ५२९) 'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे'

प्राकृतभाषा अने जैन साहित्य विषयक
संपादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

१४

संकलनकार : आचार्य विजयशीलचन्द्रसूरि • हरिवल्लभ भायाणी

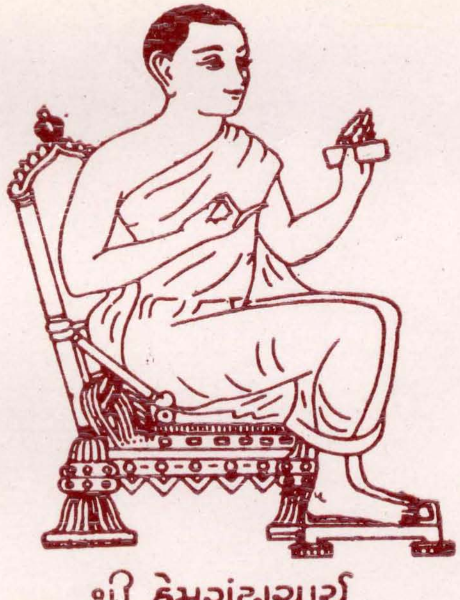

श्री हेमचंद्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृतिसंस्कार शिक्षणनिधि

अहमदाबाद
१९९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)
'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे.'

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैन साहित्य विषयक
संपादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

१४

संपादको : **विजयशीलचन्द्रसूरि**
हरिवल्लभ भायाणी

श्री हेमचंद्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि
अहमदाबाद
ओगस्ट १९९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुसंधान १४

संपर्क : हरिवल्लभ भायाणी
२५-२, विमानगर, सेटेलाईट रोड,
अहमदाबाद- ३८० ०१५.

प्रकाशक : कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम
जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि,
अहमदाबाद, १९९९

किंमत : रू. ३५-००

प्राप्तिस्थान : सरस्वती पुस्तक भंडार
११२, हाथीखाना, रतनपोल,
अहमदाबाद - ३८० ००१

मुद्रक : राकेश टाइपो - डुप्लिकेटींग वर्क्स
राकेशभाई हर्षदभाई शाह
२७२, सेलर, बी.जी. टावर्स,
दिल्ली दरवाजा बहार,
अहमदाबाद- ३८० ००४.
(फोन : ६३०३२००)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवेदन

अनुसन्धान-१४, जिज्ञासुओने खासी प्रतीक्षा कराव्या पछी प्रकाशित थाय छे. अनुरूप मुद्रणव्यवस्था आ प्रकारनां प्रकाशनोने मळवी, मळ्या करवी, ते पण एक अटपटी समस्या छे. ए व्यवस्थाने अनुसरवुं ज पडे, अने तेम करवा जतां विलम्ब वेठवो ज पडे.

मुद्रणव्यवस्था करतां पण वधु गंभीर समस्या छे प्रूफवाचननी. आ प्रकारनां प्रकाशनोनी सामग्रीनां प्रूफवाचको अत्यारे भाग्ये ज मळे अने मळे तेमनी पण सज्जता केवी-केटली ते पण घणीवार न समजाय.

आवी आवी मुश्केलीओने कारणे अंक विलंबथी आपी शकाय छे, तेनो ख्याल हवे जिज्ञासुओने आवी गयो ज हशे.

सामग्रीनी दृष्टिए आ अंकमां घणुं वैविध्य तेमज वैपुल्य छे, जे ते ते विषयना अभ्यासीओने माटे रसप्रद बनी रहेशे, तेवी श्रध्धा छे.

– संपादको

विज्ञप्ति

पृ. १३१-१३४ गलती से बहुत अशुद्ध छप गये हैं। इस लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं।

इस पृष्ठोंको रद्द समझे।

संपादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

१.	षड्दर्शन- परिक्रमः गूर्जर अवचूरि सह	सं. मुनि कल्याणकीर्तिविजय	१-१०
२.	अज्ञातकर्तृक बे दृष्टान्त शतको	सं. मुनि धर्मकीर्तिविजय	११-२६
३.	अज्ञातकर्तृक समवसरणस्तोत्र	सं. आ. अरविंदसूरि	२७-३०
४.	मुनि विनयवर्धनलिखित - एक विज्ञप्तिपत्र	सं. मुनि रत्नकीर्तिविजय	३१-३७
५.	अष्ट महाप्रातिहार्यवर्णनः अपभ्रंशभाषामय आठ पद्य	सं. प्रद्युम्नसूरि	३८-४१
६.	सोमतिलकसूरिविरचितं करहेटकपार्श्वनाथस्तोत्रम्	सं. विजयमुनिचन्द्रसूरि	४२-४४
७.	श्री भंवरलाल नाहटा (कलकत्ता) का पत्र		४५-४७
८.	कविविल्हरचित-भीमछंद (अणहिलपुर)	सं. भंवरलाल नाहटा	४८-४९
९.	वाचकश्रीसिद्धिचन्द्रगणिकृत न्यायसिद्धान्तमञ्जरी - टिप्पनक	सं. मुनि कल्याणकीर्तिविजय	५०-६९
१०.	'चंदप्पहचरियं'नी रूपककथा	सं. सलोनी जोषी	७०-९१
११.	सूक्तावली	सं. नीलांजना शाह	९२-१०५
१२.	कल्पसूत्रमें भद्रबाहु-प्रयुक्त 'याग' शब्द	विजयशीलचन्द्रसूरि	१०६-११२
१३.	डॉ. मधुसूदन ढांकीने श्रीहेमचन्द्राचार्य चन्द्रक-प्रदानना समारोहनो तथा 'आर्य भद्रबाहु और उनका साहित्य' विषयक संगोष्ठीनो संक्षिप्त हेवाल		११३-११४
१४.	प्रकाशन - वर्तमान		११५-११६
१५.	टूंक नोंध :-	विजयशीलचन्द्रसूरि	११७-११९
१६.	उत्तर गुजरातनी बोलीमां वपराता केटलाक शब्दो	डॉ. रमेश आ. ओझा	१२०-१२३
१६.	गुजरातीमां महाप्राण व्यंजन अल्पप्राण थवो	हरिवल्लभ भायाणी	१२४-१३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षड्दर्शन-परिक्रमः गूर्जर अवचूरि सह

– सं. मुनि कल्याणकीर्तिविजय

भूमिका

षड्दर्शन-परिक्रमनी आ प्रत वर्षोथी मारा परमगुरुभगवंत पू.आ. श्रीविजय सूर्योदयसूरीश्वरजी म.ना संग्रहमां हती। आगमप्रभाकर पूज्य मुनि श्रीपुण्यविजयजी महाराजे आ प्रत जोतां कहेलुं के 'आ प्रत नवीन अने अप्रकाशित छे माटे तेनुं संपादन प्रकाशन थवुं जोइए।' वर्षो पछी मारा पू. गुरुभगवंत द्वारा आ प्रत मारी पासे आवी। तेनुं यथामति संपादन करी अहीं रजू करेल छे।

नाम प्रमाणे ज आ ग्रंथमां छए दर्शननो सामान्य परिचय आपेल छे। षड्दर्शनसमुच्चयमां १. बौद्ध २. नैयायिक ३. सांख्य ४. जैन ५. वैशेषिक ६. जैमिनीय अने ७. लोकायत (नास्तिक), आ क्रमे दर्शनोनुं निरूपण थयुं छे, ज्यारे आ ग्रंथमां १. जैन २. मीमांसक ३. बौद्ध ४. सांख्य ५. शैव (न्याय-वैशेषिक) अने ६. नास्तिक आ क्रमे दर्शनोनुं निरूपण छे.। षड्दर्शनसमुच्चयना बौद्ध दर्शनना श्लोक ५ तथा ८ अने आ ग्रंथना श्लोको २३ तथा २८ समान छे। ते सिवाय पण बन्ने ग्रंथोना विषय-निरूपणमां घणुं साम्य छे. छतां आ ग्रंथमां दरेक मतना भिक्षुओनुं तथा तेमनां वस्त्र पात्र आचार व.नुं वर्णन कर्युं छे जे षड्दर्शनसमुच्चयमां नथी मळतुं।

दर्शन	विषय	श्लोक
जैन	तत्त्वो, प्रमाण, श्वेतांबर - दिगंबर साधुओनी ओळख तथा दिगंबरोनी मान्यता।	२ थी १३
मीमांसक	मीमांसकोना कर्म-ब्रह्म एम बे प्रकार, प्रमाण, मुक्ति नी व्याख्या तथा तेओना द्विजो व.नुं वर्णन।	१४ थी २०
बौद्ध	तत्त्वो, प्रमाण, तेओना ४ प्रकार तथा भिक्षुओनुं वर्णन।	२१ थी ३१
सांख्य	२५ तत्त्वो, प्रमाण, मुक्तिनी व्याख्या तथा भिक्षुओ	३२ थी ३९
शैव-न्याय	प्रमाण तथा १६ तत्त्वो	४० थी ४४
वैशेषिक	प्रमाण तथा ६ तत्त्वो	४५ थी ५४
	पछी बन्नेना मते मुक्ति नी व्याख्या अने भिक्षुओनुं वर्णन छे।	५५ थी ५८
नास्तिक	मान्यता तथा प्रमाण।	५९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्यारबाद श्लोक ६० थी ६५मां प्रत्यक्षादि दरेक प्रमाणनी तथा तत्त्व अने तत्त्वसाधक प्रमाणनी व्याख्या आपी छे अने छेल्ले ६६मा श्लोकमां कह्युं छे के रहस्य सहितनां सर्व शास्त्रो तो दूर रहो, सारी रीते शीखेलो एक अक्षर पण निष्फळ जतो नथी।

आ साथे प्रतिमां ग्रंथनो स्तबकार्थ पण जूनी गूजरातीमां आपेलो छे। अमुक स्थानोने बाद करतां प्राय : सर्वत्र आ टबो योग्य अने संगत छे। परंतु केटलांक स्थानोमां आ स्तबकार्थ असंगत जणाय छे, तेनी नोंध नीचे आपेल छे।

श्लोक	असंगत अर्थ	संभवित संगत अर्थ
३	पुन्य-पापनइ संवरइ पुन पुनरपि कर्मबंध न करइ।	पुन्यनो संवरमां अने पापनो आश्रवमां अंतर्भाव करवो।
४	ज्ञान-दर्शन-चारित्र मोक्षनइ विषइ वर्तइ।	ज्ञान-दर्शन-चारित्र मोक्षनो मार्ग छे।
२१	एहनइ च्यारि दर्शनना प्रवर्तावक हूआ। अनुक्रमइ आर्य सत्य आख्याय अने तत्त्व।	बौद्धोना चार तत्त्वो आर्यसत्य ए नामे प्रसिद्ध छे। ते आ प्रमाणे।
६०	नास्तिक अनुमानना त्रण अंग कहइ (व.)।	अनुमिति लिंगथी थाय, जेम धूमथी अग्निनी अनुमिति।
६१	नास्तिक शेष थाकती सिद्धि जे ते सामान्याकारि कहइ (व.)।	अनुमानना त्रण प्रकार छे : पूर्व, शेष, सामान्य। (साथे तेना उदाहरण पण छे)
६२	सामान्य प्रकारि विख्यात हुइ ते साध्य ओपमाइ करी देखाडीयइ ते साधन	साध्य-साधन सामान्यथी कह्या छे. उपमा आ प्रमाणे छे।

आना लीधे कल्पी शकाय छे के मूळ ग्रंथ तथा टबाना कर्ता जुदा जुदा छे.

श्लोक ३१मां आवता मौण्ड्य शब्दनो अर्थ टबाकारे 'मस्तकि **सद्र** करावइ' एवो कर्यो छे। आ **सद्र** शब्दनो प्रयोग नोंधपात्र छे।

प्रतनो परिचय : षड्दर्शनपरिक्रमनी आ प्रत पंचपाठी छे। तेनुं लेखन सं. १६३६मां श्रीमालपुरमां थयेलुं छे। अने तेना लेखक (मुनि) **समयकलश** छे। प्रतिनी शुद्धि सारी छे तथा अक्षरो सुवाच्य छे। कुल पत्रो ३ छे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूळ कृतिना कर्ता विषे आमां कोइ निर्देश प्राप्त नथी थतो । अवचूरिना कर्ता संभवतः प्रतिना लेखक मुनि समयकलश होय एवुं लागे छे; जो के तेनो पण स्पष्ट निर्देश तो नथी ज मळतो ।

अज्ञातकर्तृक

षड्दर्शनपरिक्रम

गूर्जर अवचूरि सह

जैन मैमांसकं बौद्धं साङ्ख्यं सै(शै)वं च [1]नास्तिकम् ।
[2]स्वं स्वं च तर्कभेदेन जानीयाद(द्द)र्शनानि षट् ॥१॥
बल-भोगोपभोगानामुभयोर्दान-लाभयोः ।
अन्तरायस्तथा निद्रा भीरज्ञानं जुगुप्सनम् ॥२॥
हासो रत्यरती राग द्वेषाववव(वि)रति[:]स्मरः ।
शोको मिथ्यात्वमेतेऽ[3]ष्टादश दोषा न यस्य सः ॥३॥
जिनो देवो गुरुः [4]सम्यक् तत्त्वज्ञानोपदेशकः ।
ज्ञान[5]-दर्शन-चारित्राण्यपवर्गस्य वर्त्तिन (वर्त्तनी) ॥४॥
स्याद्वादश्च प्रमाण[6] द्वे प्रत्यक्षं [7]चो(च) परोक्षकम् ।
नित्यानित्या(त्यं) जगत् सर्वं नव तत्त्वानि सप्त वा ॥५॥
जीवाजीवौ पुण्यपापे आश्रवः संवरोऽपि च ।
बन्धो निर्जरणं मुक्तिरेषां व्याख्याऽधुनोच्यते ॥६॥
चेतनालक्षणो जीवः स्यादजीवस्तदन्यकः ।
सत्कर्मपुद्गलाः पुण्यं पापं तस्य विपर्ययः ॥७॥

---

१. नास्तिकं; चार्वाकम् । २. पोतानी(ना) पोताना विचार तेणइ करी ऊपनउ जे भेद तिणइ करी षट् दर्शन जाणिवा । ३. एहवा जे अढार दोष रहित ते जैन देव । ४. सत्य जे तत्त्वज्ञान तेहनउ उपदेश दीयइ ते गुरु । ५. ज्ञान दर्शन चारित्र मोक्षनइ विषइ वर्तइ (?) । ६. प्रमाण दोइ-प्रत्यक्ष, अनुमान; ज्ञाननूं कारण कहतां उपजावीयइ जेणइ करी अन्य अन्य करीयइ ते प्रमाण विजाणिवा। ७. **मनुमाऽपि** च । द्वितीय(?)पाठान्तरम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आश्रव: कर्मसम्बन्ध: कर्मरोधस्तु संवर: ।
कर्मणां बन्धनाद् बन्धो [१]निर्जरा तद्वियोजनम् ॥८॥
[२]अष्टकर्मक्षयान्मोक्षोऽप्यन्तर्भावश्च कश्चन ।
[३]पुण्यस्य संवरे पापस्याऽऽश्रवे क्रियते पुन: । ॥९॥
[४]लब्धानन्तचतुष्कस्य लोकाग्रस्थस्य चाऽऽत्मन: ।
[५]क्षीणाष्टकर्मणो मुक्तिरव्यावृत्तिर्जिनोदिता ॥१०॥
[६]सरजोहरणा भैक्ष्यभुजो [७]लुञ्चित[८]मूर्द्धजा: ।
श्वेताम्बरा: क्षमाशीला: निस्सङ्गा जैनसाधव: ॥११॥
लुञ्चिता: पिच्छकाहस्ता: पाणिपात्रा **दिगम्बरा:** ।
[९]ऊर्ध्वाशिनो गृहे दातुर्द्वितीया: स्युर्जिनर्षय: ॥१२॥
[१०]भुङ्क्ते न केवली न स्त्री मोक्षगेति दिगम्बरा: ।
प्राहुरेषामयं भेदो महान् श्वेताम्बरै: समम् ॥१३॥ इति **जैनम्** ॥
मीमांसकौ द्विधा **कर्म-ब्रह्ममीमांसक**स्तत: ।
वेदान्ती [११]मन्यते ब्रह्म कर्म [१२]**भट्ट-प्रभाकरौ** ॥१४॥
प्रत्यक्षमनुमानं च वेदाश्चोपमया सह ।
अर्थापत्तिरभावश्च [१३]**भट्टानां** षट्प्रमाण्यसौ[१४] ॥१५॥
प्रभाकरमते पञ्च तान्येवाऽभाववर्जनात् ।
अद्वैतवादी [१५]**वेदान्ती** प्रमाणं[१६] तु यथा तथा ॥१६॥

१.कर्म छूटीयइ ते निर्जरा। २.आठ कर्म क्षय थकी मुक्ति होइ ते मुक्ति नउ लक्षण केहवउ; एक लीनभाव। ३.पुन्यपापनइ संवरइ पुन-पुनिरपि कर्मबंध न करइ(?)। ४.अनंतज्ञान-अनंतदर्शन-चारित्र-सुखलक्षणानि चत्वारि, एहवा ४ अनंत पामइ पछइ आत्मा लोकाग्रकइ विषइ रहइ। ५.क्षीणाष्टकर्मनइ मुक्ति होइ; अपुनरावृत्ति जेनइ कही। ६. रजोहरण साथइ लीधइ चालइ। ७. भिक्षायइ जिमइ। ८.लोच करइ। ९. दाताना घरकइ विषइ ऊभा रही जिमइ। १०. दिगंबर कहइ-स्त्रीनइ मुक्ति नही, केवलीनइ भुक्ति नही, श्वेतांबरसुं मोटउ भेद-जूजूआ। ११.वेदांती उत्तरमीमांसाना जाण ते ब्रह्मनइ मानइ।१२. भट्टाचार्य अनइ प्रभाकर तेहनउ शिष्य ए बन्नइ कर्मनइ मानइ। १३.भट्टाचार्य छ प्रमाण करी अर्ध(र्थ) सिद्ध मानइ; उत्तरमीमांसाना जाण। १४. षण्णां प्रमाणानां समाहार: षट्प्रमाणी। भट्टाचार्यनइ छविध प्रमाण नेत्रनिर्धार ते प्रत्यक्ष(१) वेगला थकी संदेह आणी वस्तु निर्धार कीजइ ते अनुमान(२) वेदोक्त ते प्रमाण(३) उपमा देइने निर्धार कीजइ सु उपमा प्रमाण(४) अणघटनइ घटावी निर्धार कीजई ते अर्थापत्ति ते किम गृहस्थनइ अति आनंदादिकई करी धर्म निर्धारीयइ-इत्यादि अर्थापत्ति प्रमाण(५) अभाव ते कहीयइ जे एक ठामि अछतइ बीजइ ठामि कीजइ छती-ते किम-इहां घट नथी बीजइ ठामि छतउ कीधउ इत्यादि ते अभावप्रमाण(६)। १५. वेदांती एक ब्रह्मनइ मानइ। १६. छ प्रमाणमांहि जेहनउ प्रस्ताव हुइ तेणइ प्रमाणि करी अर्थसिद्धि मानइ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]सर्वमेतदिदं ब्रह्म वेदान्तेऽद्वैतवादिनाम् ।
[2]आत्मन्येव लयो मुक्तिर्वेदान्तिकमते मता ॥१७॥
[3]अकुकर्मा सषट्कर्मा [4]शूद्रान्नादिविवर्जकः ।
[5]ब्रह्मसूत्री द्विजो भट्टो गृह[6]स्थाश्रमसंस्थितः ॥१८॥
[7]भगवन्नामधेयास्तु द्विजा वेदान्तदर्शने ।
[8]विप्रगेहभुजस्त्यक्तोपवीतादव्र(ता ब्र)ह्मवादिनः ॥१९॥
[9]चत्वारो भगवद्भेदाःकुटीचर-बहूदकौ ।
हंसः परमहंसश्चाऽ[10]धिकोऽमीषु परः परः ॥२०॥ **मीमांसकः॥**

अथ बौद्धम् ॥

बौद्धानां[11] सुगतो देवो विश्वं[12] च क्षणभङ्गुरम् ।
[13]आर्यसत्याख्यया तत्त्व[14]चतुष्टयमिदं क्रमात् ॥२१॥
दुःखमायतनं चैव ततः समुदयो मतः ।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः ॥२२॥
[15]दुःखं संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्च प्रकीर्तिताः ।
विज्ञानं वेदना सञ्ज्ञा संस्कारो रूपमेव च ॥२३॥

अथाऽऽयतनानि - पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषयाः पञ्च मानसम् ।
धर्मायतनमेतानि द्वादशाऽऽयतनानि तु ॥२४॥

अथ समुदयः- रागादीनां गणो यस्मात् समुदेति नृणां हृदि ।
आत्मा(त्मना)ऽऽत्मीस्वभावाख्यः स स्यात् समुदयः पुनः ॥२५॥

---

१. सर्व प्रपंच ब्रह्म-एहवउ वेदांतीन अद्वैतवाद । २.परमात्मा नइ विषइ लीन ते वेदांतीनइ मनइ मुक्ति । ३.भट्ट नइ कुत्सितकर्म न करइ अनइ षट्कर्म करइ । ४.शूद्रादिकनइ घरि अन्न न जिमइ, एतलइ ब्राह्मणनइ अन्नइ जीवइ । ५. ब्रह्मसूत्री कहता जनोई पहिरइ अनइ ब्रह्मयुक्त हुइ, विद्वांस हुइ । ६. गृहस्थाश्रमइ रहइ । ७. वेदांतदर्शनइ भगवन एहवउ नामधेय । ८. ब्राह्मणनइ घरि जिमइ अनइ जनोई छांडइ अनइ परमात्मानइ मानइ । ९. ते भगवनना ४ भेद मठ मांडी रहइ ते कुटीचर(१) मठरहित ते बहूदक(२) सर्वसंग मूकइ ते हंस(३) दिगंबर ते परमहंस(४) । १०.एतइ चडती चडती क्रिया जाणिवा । ११. बौद्धनइ सुगत एहवइ नामइ देव कहेतां परमेश्वर । १२. सर्व क्षणमांहिइ पलटातुं मानइ । १३. एहनइ च्यारि दर्शनना प्रवर्त्तावक हूआ अनुक्रमइ आर्य(१) सत्य(२) आख्याय(३) तत्त्व(४) ४ जाणिवा । १४. एहना शास्त्रनइ विषइ ४ नउ निरूपण एक दुःख(१) आयतन(२) समुदय(३) मार्ग(४) । १५.संसारी जीवनइ ५ स्कन्ध दुःख कहीयइ । ते केहा-एक विशेषज्ञान(१) बीजुं सदुःखानुभव(२) आहारादि संज्ञा(३) संस्कारो-कर्म वासना(४) रूप-शुक्लादि (५) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ मार्गः- [१]क्षणिकाः सर्वसंस्काराः इति या व(वा)सना स्थिरा ।
स मार्ग इति विज्ञेयः स च मोक्षोऽभिधीयते ॥२६॥
[२]प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणद्वितयं पुनः।
चतुः[३]प्रस्थानका बौद्धाः ख्याता **वैभाषिकादयः** ॥२७॥
अर्थो ज्ञानान्वितो **वैभाषिकेण**[४] बहुमन्यते ।
सौत्रान्तिकेण[५] प्रत्यक्षग्राह्योऽर्थो न बहिर्मतः ॥२८॥
आकारसहिता बुद्धि**र्योगा**[६]**चारस्य** सम्मता ।
केवलं संविदं स्वस्थां मन्यन्ते **मध्यमाः**[७] पुन ॥२९॥
रागादि[८]ज्ञानसन्तानवासनोच्छेदसम्भवा ।
चतुर्णामपि बौद्धानां मुक्तिरेषा प्रकीर्तिता ॥३०॥
[९]कृत्तिः [१०]कमण्ड[११]लुर्मौण्ड्यं[१२] चीरं[१३] पूर्वा[१४]ह्णभोजनम् ।
[१५]सङ्घो रक्ताम्बरत्वं[१६] च शिश्र[१७](श्रि)ये बौद्धभिक्षुभिः ॥३१॥

अथ साङ्ख्यम् ॥

[१८]साङ्ख्ये देवः शिवः कैश्चिन्मत्तो(तो) नारायणः परैः ।
उभयो[१९][:] सर्वमप्यन्यत्तत्त्वप्रभृतिकं समम् ॥३२॥
स(सा)ङ्ख्यानां[२०] स्युर्गुणाः सत्त्वं रजस्तम इति त्रयः ।
साम्यावस्था[२१] भवे(व)त्येषां त्रयाणां प्रकृतिं(तिः) पुनः ॥३३॥

---

१. बौद्धनइ मार्ग-सर्व क्षणिक क्षणभंगुर-एहवी जेहनी बुद्धि स्थिर एहने मार्ग, एतलुं जाण्यइ मोक्ष कहीयइ । २. प्रत्यक्ष अनइ अनुमान प्रमाण करी वस्तुनी सिद्धि करइ । ३. बिहु शास्त्रना प्रवर्तावक ४(च्यारि) वैभाषिकादि शिष्य छइ । ४. वैभाषिक तेहवुं मानइ-पदार्थनइ ज्ञान एक मानइ । ५. सौत्रांतिक ते प्रत्यक्ष तेहज अर्थ पदार्थ मानइ अनइ अप्रत्यक्ष स्वर्ग, नरकादि न मानइ। ६. योगाचार ते बुद्धिनइ आकार मानइ-एतइ घटादि सर्व बुद्ध्याकार। ७. मध्यम ते केवल जे ज्ञान तेहनइ आत्मस्थित मानइ, चिहुं बुद्धिनइ मुक्ति एह परिनी मानइ । ८. राग-द्वेषादि तेहनूं जे जाणपणूं तेहनउ जे संमोह तेहनी वासना कहेतां संस्कार तेहनउ उच्छेद कहेतां नाश तेह थकी ऊपनी मुक्ति कहइ च्यारि बौद्ध । ९. **बौद्धाण्डभाजनम्** । द्वितीयपाठः । १०. अथ बौद्धना भिक्षु कहइ छइ । कृ त्ति चर्मपरिधान । ११. उदक पात्र कमण्डलु । १२. मस्तकि सद्र करावइ । १३. वाकल-वृक्ष त्वचा परिहइ ।१४. बिहुं पहुरामाहि जिमइ । १५. संघाडइ हींडइ । १६. वली राता वस्त्र पहिरइ । १७. बौद्धना भिक्षु एहवा वेस आश्रइ । १८. सांख्यभेद कहइ-एक सांख्य शिवनइ मानइ, केहा एक नारायणनइ मानइ । १९. बिन्हइ तत्त्व २४ ज मानइ । २०. सांख्यनइ त्रीनि गुण छइ-एक सत्त्व(१)रज(२) तम(३) । २१.ए तिन्हि गुणनी समी अवस्था तेहनइ प्रकृति कहइ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]प्रकृ[2]तेश्च [3]महांस्तावदहङ्[4]कारस्ततोऽपि च ।
पञ्च[5] बुद्धीन्द्रियाणि स्युश्चक्षुरादीनि पञ्च च ॥३४॥
कर्मेन्द्रि[6]याणि वाक्-पाणिचरणोपस्थ-पायवः ।
[7]मनश्च पञ्च तन्मात्राः[8] शब्द(ब्दो) रूपं रसस्तथा ॥३५॥
स्पर्शो गन्धोऽपि तेभ्यः स्यात् पृथ्व्याद्यं[9] भूतपञ्चकम् ।
[10]इयं प्रकृतिरेतस्यां[11] परस्तु पुरुषो मतः ॥३६॥
पञ्च[12]विंशतितत्त्वीयं नित्यं साङ्ख्यमते जगत् ।
[13]प्रमाणत्रितयं चाऽत्र प्रत्यक्षमनुमाऽऽगमः ॥३७॥
यदे(दै)व ज्ञायते भेदः प्रकृते(:) पुरुषस्य च ।
मुक्तिरुक्ता तदा साङ्ख्यैः ख्यातिः सैव च भण्यते ॥३८॥
साङ्ख्यः [14]शिखी [15]जडी [16]मुण्डी [17]कषायाद्यम्बरोऽपि च ।
वेषे[18] नी(नाऽऽ)स्थैव साङ्ख्यस्य पुनस्तत्त्वे महाग्रहः ॥३९॥ **साङ्ख्यम्** ॥

अथ शैवम् ॥ शैवस्य[19] दर्शने तर्कावुभौ **न्याय-विशेषकौ** ।
न्याये[20] षोडशतत्त्वी स्यात् षट्तत्त्वी च विशेषकै[21]:(के) ॥४०॥
[22]अन्योन्यतत्त्वान्तर्भावात् द्वयोर्भेदोऽस्ति नाऽस्ति वा ।
द्वयोरपि शिवो देवो नित्य(:) सृष्ट्यादिकारकः ॥४१॥
नैयाकानां[23] चत्वारि प्रमाणानि भवन्ति च ।
प्रत्यक्षमागमोऽन्यश्चाऽनुमानु(न) मुपमाऽपि च ॥४२॥

---

१. हिवइ चउवीस तत्त्व कहइ छइ २. एक प्रकृति (१) अनइ प्रकृतिथी उपन इ ३. महत(त्त)त्त्व(२) ४. अहंकार (३) ५. चक्षु आदि पांचबुद्धें(ध्दीं)द्रिय (४-८)। ६. पांच कर्मेन्द्रिय एक वाणी, हाथ, चरण, गुह्यनइ गुद एवं (९-१३) १३ । ७. मन (१४) । ८. अनइ पांच तन्मात्रा एक शब्द, रूप, रस, स्पर्श, गंध ए पांच एवं (१५-१९ । ९. अनइ पृथ्व्यादि पांच भूत एवं (२०-२८) । १०. एवं २४ तत्त्वे प्रकृति कहीयइ। ११. तेथी अलगउ ते पुरुष कहेता परमेश्वर १२. सांख्यनइ चउवीस तत्त्व पंचवीसमउ परमेश्वर, तिणइ करी जगत मानइ । १३. प्रमाण त्रिन्हि मानइ एक प्रत्यक्ष (१) अनुमान(२) अनइ वेद(३) । १४. अथ सांख्यना भिक्षु कहइ छइ एक शिखा रखावइ (१) १५. एक वधारइ (२)। १६. एक मूंडावइ (३) । १७. लूगडां कषायांबर पहिरइ । १८. अमुकइ ज वेषि हींडइं एहवी आस्था नही, अनइ तत्त्वनइ विषइ निरूपण घणु करइ । १९. शैवदर्शनी शैवदर्शनकइ विषइ वितर्क छइ, एक न्यायशास्त्र छइं (१) बीजुं विशेषशास्त्र छइ(२) । २०. ज्ञा(न्या) यनइ विषय १६ पदार्थ छइ । २१. विशेष नइ विषय छ पदार्थ छइ । २२. परस्परइ तत्त्वनउ अंतर्भाव कीधउ छइ; एतलइ सोलनइ विषय षट्, षट्नइ विषइ १६ । सोल मानइ ते ६ न थापइ, छ थापइ ते १६ न थापइ । २३. एणि चिहुं प्रमाणे करी पदार्थनी सिद्धि करइ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ तत्त्वानि-प्रमाणं[1] च प्रमेयं च[2] संशयश्च[3] प्रयोजनम्[4]।

दृष्टान्तोऽप्यथ[5] सिद्धान्ता[6]वयवौ[7][8] तर्क - [9]निर्णयौ ॥४३॥

[10]वादो [11]जल्पो [12]वितण्डा च [13]हेत्वाभासच्छलानि[14] च।

[15]जातयो निग्रहस्थानानीति[16] तत्त्वानि[17] षोडश ॥४४॥

[18]**अथ वैशेषिकम्**-वैशेषके मते तावत्[19] प्रमाणत्रितयं भवेत्।

प्रत्यक्षमनुमानं च तार्त्तीयकमथाऽऽगमः ॥४५॥

[20]द्रव्यं[21] [22]गुणस्तथा[23] कर्म सामान्यं सविशेषकम्।

समवायश्च षट्तत्त्वी तद्व्याख्यानमथोच्यते ॥४६॥

द्रव्यं नवविधं प्रोक्तं पृथ्वी-जल-वह्नयस्तथा।

पवनो गगनं कालो दिगात्मा मन इत्यपि ॥४७॥

नित्यानित्यानि[24] चत्वारि कार्यकारणभावतः।

मनो-दिग्(क्) काल आत्मा च व्योम नित्यानि पञ्च तु ॥४८॥

अथ गुणाः-स्पर्शो रूपं रसो गन्धः सङ्ख्याऽथ परिमाणकम्।

[25]पृथक्त्वमथ संयोग[26]: विभागोऽथ[27] परत्र[28](त्व)कम् ॥४९॥

[29]अपरत्वं बुद्धिसौख्ये (दुःखे)[30]च्छे द्वेष-यत्नकौ[31] ।

धर्मा-धर्मौ च संस्कारा[32] गुरु[33](त्वं) द्रव[34] इत्यपि ॥५०॥

---

१. चिहुं प्रमाणे एक पदार्थ(१)। २. दृश्य पदार्थ ते प्रमेय(२)। ३. इम ए हुइ कि न हुइ तेहनउ निर्णय(३)। ४. अर्थसिद्धि (४)। ५. दृष्टांतइ करी प्रीछवीयइ ते (५)। ६. सिद्धांतनिश्चय(६) ७. अंशइ करीनइ पदार्थसिध्दि (७) ८. विचार(८)। ९. निर्णय(९)। १०. तत्त्वविचारनी वार्ता ते वाद(१०)। ११. उत्तमकथा ते जल्प(११)। १२. माहोमाहे विचार ते वितण्डावाद(१२)। १३. हेतु सरिखुं पणइ हेतु न हुइ ते हेत्वाभास(१३)। १४. वाक्य बीजुं अनइ अर्थथी बीजुं करी छलियइ ते छल (१४)। १५. जात(ति) कहेतां सामान्य विशेष बिहुं प्रकारनी छइ (१५)। १६. वादीनइ निग्रहना स्थानक (१६)। १७. ए १६ तत्त्व। १८. अथ वैशेषिक कहइ छइ। १९. वैशेषिकनइ त्रिहुं प्रमाणे करी अर्थसिद्धि मानइ। २०. एहनइ छ पदार्थ कहइ छइ। २१. द्रव्य कहेतां नव। २२. गुण कहेतां२४। २३. कर्म बिहुं प्रकारनउ। २४. पृथ्वीजलाग्निवायु ए च्यारि नित्य छइ अनित्य छइ, परमाणु भावइ नित्य स्थूलभावइ अनित्य। २५. पृथक्त्व कहेतां नील पीतादिभेद द्वयोः। २६. संयोगः द्वयो :। २७. विभाग कहेतां विहचवुं। २८. परत्व कहेतां न्यून। २९. अपरत्व कहेतां अधिकमति। ३०. इच्छा वांछा। ३१. यत्न कहेतां रक्षानुं(?)करवुं। ३२ संस्कार कहेतां वासना। ३३. गुरुत्व कहेतां भारो। ३४. द्रवत्व कहेतां ढीलुं थावुं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्नेहः[१] शब्दो[२] गुणा[३] एवं विंशतिश्चतुरन्विता ।
अथ कर्माणि[४] वक्षा(क्ष्या)मः प्रत्येकमभिधानतः ॥५१॥
[५]उत्क्षेपणावक्षेपणा[६]-कुञ्चन[७] प्रसारणम्[८] ।
[९]गमनानीति कर्माणि पञ्चोक्तानि[१०] तदागमे ॥५२॥
[११]सामान्यं भवति द्वेधा[१२] परं चैवाऽपरं तथा ।
प्र(पर)[१३]माणुषु वर्तन्ते विशेषा नित्यवृत्तयः ॥५३॥ सामान्यविशेषौ ॥
[१४]भवेदयुतसिद्धानामाधाराधेयवर्तिनाम् ।
सम्बन्धः समवायाख्य इहप्रत्ययहेतुक : ॥५४॥
[१५]विषयेन्द्रियबुद्धीनां वपुषः सुख-दुःखयोः।
अभावो(वा)दात्मसंस्थानं मुक्ति नै(नै)यायिकैर्मता ॥५५॥
[१६]चतुर्विंशवैशेषिकगुणान्तर्गुणा(न्तरगुणा)नव ।
बुद्ध्यादयस्तदुच्छेदो मुक्ति वैशेषिकी तु सा ॥५६॥
[१७]आधार-भस्म[१८]-को(कौ)[१९]पीन जटा[२०]-यज्ञोपवीतिनः[२१]।
[२२]मन्त्राचारादिभेदेन चतुर्धा स्युस्तपस्विनः ॥५७॥
[२३]शैवाः पाशुपताश्चैव महाव्रतधरास्तथा ।
तुर्याः कालमुखा मुख्या भेदा एते तपस्विनाम् ॥५८॥

इति शैवम् ।

---

१. स्नेह कहेतां चिक्कणता । २. शब्द आकाशोद्भव (२४)। ३. एवं गुण २४ हूआ । ४. हिवइ कर्मना नाम कहइ छइ । ५. उडवउं । ६. अधः जाइवुं । ७. ताणिवुं । ८. विस्तारवुं । ९. जावुं । १०. तेहना आगमनइ विषइ पांच बोल्यां । ११. सामान्य बिहुं प्रकारे । १२. सर्वत्र वर्तइ ते पर, अनइ एक विषइ वर्तइ ते अपर, ए बिहुंइं करी पदार्थ निर्धार करीयइ । १३. परमाणुं विषइ वर्तइ तेहनइ विशेष कहीयइ अनइ नित्यवर्ती कहीयइ । १४. अथ समवाय जूजूआ नीपजइ ते अयुतसिद्ध, ते एक एकनइ आधारि रहइ । तेहनउ जु संबंध तेहनइ समवाय कहीयइ : आहा छइ एह ज्ञाननउ कारण ते समवायः । १५. विषय इंद्रिय बुद्धि अनइ शरीरनुं सुख दुःख तेहनउ जे अभाव कहेता नाश, एहवा आत्मानउं थापिवुं नैयायिकनइ ते मुक्ति बोलीयइ । १६. पूर्वोक्त २४ गुण मांहि बुद्ध्यादिक जे नव तेहनउ जे उच्छेद नाश ते वैशेषिकनइ मुक्ति । १७. नैयायिकना तपस्वी कहइ छइ झोली भिक्षापात्र लीधइ हींडइ । १८. राख अडाडइ । १९. १ वस्त्र राखइ । २०. जटा राखई। २१. जनोऊ पहिरइ । २२. ए चिहुं प्रकारना मंत्रभेद करी च्यारि तपस्वी छइ । २३. एकशिवोपासकाः शैवाः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ नास्तिकम्

पञ्चभूतात्मकं[१] वस्तु[२] प्रत्यक्षं च प्रमाणकम् ।
नास्तिकानां[३] मते नान्यदन्यत्रा(दत्रा)ऽमुत्र शुभाशुभम् ॥५९॥
प्रत्यक्षमविसंवादि[४] ज्ञानमिन्द्रियगोचरम् ।
लिङ्गतोऽनुम(मि)[५] तिर्धूमादिव वह्नेरवस्थितिः ॥६०॥
अनुमानं त्रिधा पूर्वं शेषं[६] सामान्यतो यथा ।
[७]दृष्टेः सस्यं [८]नदीपूराद् [९]वृ-ष्टिरस्तांद्रवेर्गतिः ॥६१॥
ख्यातं सामान्यतः[१०] साध्यं साधनं[११] चोपमा यथा ।
स्याद्[१२] गोवद् गवयः सानादिमत्त्वमुभयोरपि ॥६२॥
आगमश्चाऽऽप्तवचनं[१३] स[१४] च कस्याऽपि कोऽपि च ।
वाच्याप्रति[१५](ती)तौ तत्सिध्दयै प्रोक्ताऽर्थापत्तिरुत्तमैः ॥६३॥
ब[१६]हुपीनोऽह्नि नाऽश्नाति रात्रावित्यर्थतो यथा ।
[१७]पञ्चप्रमाणसामर्थ्ये वस्तुसिद्धिरभावतः[१८] ॥६४॥
स्थापितं वादिभिः स्वं स्वं मतं तत्त्वप्रमाणतः ।
[१९]तत्त्वं सत्परमार्थेन प्रमाणं तत्त्वसाधकम् ॥६५॥
[२०]सन्तु सर्वाणि शास्त्राणि सरहस्यानि दूरतः ।
एकमप्यक्षरं सम्यक् शिक्षितं नैव निष्फलम् ॥६६॥

---

१. प्रपंच पंचभूतात्मक मानइ । २. अनइ प्रत्यक्ष तेह्नि प्रमाण मानइ, बीजुं न मानइ ३. अनइ नास्तिक मति इहा नइ परलोकि शुभाशुभ नथी । ४. प्रत्यक्षइ जूठउ न थाइ ते ज्ञानेंद्रिय करी देखयइ ते प्रमाण मानइ । ५. नास्तिक अनुमानना ६ अंग कहइ चिह्नइ करी (१) मविवइ करी (२) स्थितइ करी (३); जिम धूम थकी वह्नि जाणीयइ तिम अनुमानना ए ३ अंग अहिन्हणि आतलूं आतलूं इत्यादि, चिरका[ल]लागइ ते स्थिति । ७. नास्तिक शेष थाकती सिद्धि जे ते सामान्याकारि कहइ ८. जिम निष्पत्तिइ धान्यनइ मानइ ९. नदी पूरइ वृष्टिनइ मानइ । १०. आथम्यइ रविनी गतिनइ मानइ । एतलइ नास्तिकनउ मत पूरउ थयुं । ११. सामान्य प्रकारि विख्यात हुइ ते साध्य । १२. ओपमाइ करी देखाडीयइ ते साधन १३. जिम गाइ सरिखउ गवय कहेतां अरण्य पशु, ते किम कांबलउ बिहुंनइ सरीखुं हुइ । १४. यथार्थ बोलणहारनउ वचन ते आगम कहीयइ । १५. ते आप्तभाषी कहइ एकनइ को एक छइ । १६. उत्तम पुरुष एहनइ अर्थापत्ति कहइ ते वाच्यनी प्रतीतिनइ विषइ तेहनी सिद्धिनइ काजइ । १७. जिम घणू जाडउ अनइ दीहइ न जिमइ तउ जाणीयइ ते रात्रइ जिमइ ज छइ, ए अर्थापत्ति प्रमाण । १८. पांचे प्रमाणे करी वस्तुसिद्धि कहइ । १९. को एक अभावथी कहइ ए छइ प्रमाण । २०. परमार्थइ करी तत्त्व ते सत्य, अनइ प्रमाण ते जे तत्त्वनइ साधइ । २१. सर्वशास्त्र हुउ किंलक्षणानि सपणिरहस्य, दूरि छइ पिणि एक अक्षर सीख्यउ हुइ रुडी परइ ते निष्फल न हुइ किंतु सफल ज हुइ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज्ञातकर्तृक बे दृष्टान्त शतको

– सं. मुनि धर्मकीर्तिविजय

भूमिका

दृष्टान्तशतक नामक ग्रंथनी आ एकमात्र प्रति पूज्य आचार्यवर्य श्रीशीलचन्द्रसूरिजीनी पासेथी उपलब्ध थई छे. अत्र बे दृष्टान्तशतक (२०० श्लोक) प्राप्त थयां छे.

प्रतमां संवत्‌नो निर्देश नथी तथापि प्रतना मध्य भागमां छिद्र तथा अक्षरोना मरोड उपरथी अनुमान करतां जणाय छे के १४मी शताब्दीना उत्तरार्धमां अथवा १५मी शताब्दीना पूर्वार्धमां आ प्रत लखायेल छे. तथैव आ ग्रंथमां कर्तानुं नाम पण मळतुं नथी. किन्तु ग्रंथनो अभ्यास करतां निःशंकपणे कही शकाय के ग्रंथकर्ता जैनमुनि ज छे. आ ग्रंथमां ५ पत्र छे.

ग्रंथ विशेषता –

१. ग्रंथाकारे ग्रंथारंभे नमस्काररूप मंगलाचरण कर्या विना ज शास्त्रारंभ कर्यो छे.

२. ग्रंथ पूर्ण थये छते ५मा पत्रना पूर्वार्धना अन्त्यभागमां तेमज उत्तरार्धमां अन्य विषयोनुं निरूपण छे.

३. प्रतिश्लोकमां मात्र दृष्टान्त ज नथी, परंतु उपमा साथे जीवनोपयोगी व्यवहारप्रचलित तेमज बोधदायक सूत्रोनो पण उपयोग कर्यो छे.

४. ग्रंथमां केवल जैनदर्शननां ज नही, किन्तु जैनेतरदर्शनमां थयेला विशिष्टपुरुषोननां दृष्टान्त पण टांक्यां छे.

५. ग्रंथमां थोडाक श्लोकोमां आदि चरण लखीने पूर्ण करी दीधां छे. ते अन्य सुभाषित ग्रंथो थकी उपलब्ध थई शके तेम धारणा छे.

जेम के १	लक्ष्मी : पीडासहिष्णूनाम्०	१-२८
२	स्थानं सर्वस्य दातव्यमेक०	१-५६
३	समाश्रयन्ति सर्वेऽपि०	१-७९
४	अत्यासक्तस्य मूर्ध्दानमधि०	१-८-
५	सदोषपत्यसंयोगे मोदते०	१-८१
६	लक्ष्मीभवानि तेजांसि०	१-९५
७	परे पाण्डुरितं हन्तुम्०	१-९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. श्लोक १-६७ना आद्य चरणनो प्रथम शब्द वांची शकातो न होवाथी [redacted] करी शकायो नथी.

७. २-१५मां श्लोकमां शालिभद्रशब्दनो बे वार प्रयोग कर्यो ते विमर्शनीय छे.

८. आ ग्रंथमां आवता विशिष्टशब्दप्रयोग—

१. धट १-२१, ५७-धड

२. पूनिका १-३९- रुनी पूणी

३. तर्कु -१-३९, २-२६ तकली (?)

४. मिसी १-४६- जटामांसी

५. झल्लरी १-९१ झालर

दृष्टान्तशतक-१

तेजोऽत्युग्रमपि द्रव्या-भावे पुंसां प्रणश्यति ।
वह्निश्चण्डप्रतापोऽपि भस्म स्यादिन्धनक्षये ॥१॥
वृद्धानामथावज्ञा स्यादत्यासन्नापदामिह ।
पूर्णोऽथारात्कलपा(पे)तो राकेन्दुः केन वन्द्यते ॥२॥
सापवादः समृद्धोऽपि प्रायोऽवज्ञायते जने ।
पूर्णेन्दुः किं तथा वन्द्यो निकलङ्को यथा कृशः ॥३॥
सत्कृत्यस्तोकमस्तोकं प्रार्थ्यतेऽतिनवः प्रभुः ।
नवेन्दुः पोतभक्तानि तंतुनाभ्यर्च्य याच्यते ॥४॥
सर्वस्य मुष्यतेऽवश्यं परपीडाकृतोऽर्जितम् ।
मन्थान्म्रक्षणमुद्घृष्य गृह्यते दधिमन्थकात् ॥५॥
श्रीमतां दम्पतीधर्मे नेर्ष्या कापि परस्परम् ।
श्रीपतिर्यो पिकासक्तो मूर्षासक्ता हरिप्रिया ॥६॥
श्रीमतादृतमश्रेष्ठमपि श्रेष्ठं न दुःस्थितैः ।
शङ्खोर्व्यः श्रीपतेः पाणौ कपालं न कपालिनः ॥७॥
छद्मात्तं महतां वित्तं याति प्राणैः समन्वितम् ।
विदार्योदरमाकृष्टा वेदाः शङ्खस्य विष्णुना ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केचित्पिबन्ति पानीयमपि नारीनिरूपितम् ।
दशामुखार्पितं पश्य प्रदीपः स्नेहमश्नुते ॥९॥
कस्याप्यशर(सदृ)शोऽपि स्याद्रामासौभाग्यमद्भुतम् ।
स्वाङ्गे निवेश्यते स्त्रीभिरातन्यतेऽन्यकञ्चुकः ॥१०॥
वीरस्यापि वणिक्सार्थे क्षुद्रात् भवति गंजना ।
शूरोऽपि सोमपार्श्वस्थो राहुणा गिलितोन किम् ॥११॥
अशस्त्रोऽपि वणिग्विप्रौ विद्रवेत् क्षत्रियः क्षमः ।
अबाहुरपि राहुः स्यात् चन्द्रार्कग्रसनप्रभुः ॥१२॥
वीरे शस्त्रं न वा मूर्त्तिः स्फूर्त्तिरेव समीक्ष्यते ।
पश्य पुष्पैरनङ्गेन निर्जिता जगतां त्रयी ॥१३॥
निष्फलं बलमङ्गानां प्रायेण क्रूरसङ्गरे ।
न नाशाय न युद्धाय बाहोः(?) पादाः करा रवेः ॥१४॥
गीयन्ते वीर्यवन्तस्ते ये रणे न पराङ्मुखाः ।
भुजा एव बलख्याताः पतद्वतो(द्वन्तो)ऽभिसम्मुखाः ॥१५॥
अद्भुताभ्युदयं दद्युर्वृत्तवन्तः पुरस्कृताः ।
बिन्दुरग्रे कृतोऽङ्कानां दत्ते दशगुणोन्नतिम् ॥१६॥
अन्तःशून्यानुगैः स्वामी जीवन्नपि मृतायते ।
सकलोऽथ प्रमाणाङ्को बिन्दुना पृष्ठगामिना ॥१७॥
उद्वेजितोऽपि सद्वृत्तः कालमुख्यं बिभर्त्ति न ।
वर्णोज्ज्वलधरो नित्यं भुज्यमानोऽपि पर्प्पटः ॥१८॥
सद्वृत्तो दण्ड्यतेऽथाऽऽरात् छिद्रीप्राप्तोऽपि मुच्यते ।
वारिहारिघटीं त्यक्त्वा ताड्यते तटझल्लरी ॥१९॥
कृतेऽपि दोषे सद्वृत्तः सारमादाय मुच्यते ।
रिक्तीकृत्य घटी वारिहारिणी स्थाप्यते पुनः ॥२०॥
छिन्ने मूर्धनि वीराणां धावत्यारभटं धटम् ।
रुद्रनेत्राग्निदग्धाङ्गोऽथ(था)नङ्गोऽद्यापि जृम्भते ॥२१॥
आसक्तिं कुरुते नीचेऽलं पाकमिलितः प्रभु : ।
रसमिश्रं लगत्याशु किं न स्वर्णमुदम्बरे ॥२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दद्यान्मानं प्रभुर्भृत्ये व्यापारभारमर्प्पयन् ।
सूर्यः कुर्यात्कलान्यासं तमोनाशकृतेऽनले ॥२३॥
राजसंसदि न द्वेष आजन्मद्वेषिणामपि ।
एकवासो भवेत् राजमुद्रायामक्षर-श्रियोः ॥२४॥
परस्वाम्ये(म्य)पि तेजस्वी क्षुद्रात् रक्षत्युपद्रवात् ।
ब्रध्नो विध्वंसते ध्वान्तमन्यवारदिनेन किम् ॥२५॥
अलीकोक्त्या महान्तोऽपि विमुच्यन्ते प्रतिष्ठया ।
मिथ्योक्ते स शिरःस्पर्शादपूज्यो भुवि पद्मभूः ॥२६॥
महतां नामतोऽपि स्यात् क्षुद्रोपद्रवविद्रवः ।
किमगस्तिस्मृतेरेव नाहारार्त्तिः प्रणश्यति ॥२७॥
लक्ष्मीः पीडासहिष्णूनाम्० ॥२८॥
मानम्लानमपीच्छंति केचन स्वार्थपूरिताः ।
सहेतास्यरजःक्षेपं कुतपो रससंभृतः ॥२९॥
रिणमत्यर्थमप्यङ्गीकुर्यात्सर्वोऽपि दुर्बलः ।
क्षीणेन्दुरीहते पोतभक्तवृद्धया दशाञ्जनात् ॥३०॥
महतामप्यवज्ञा स्यात् वेषस्याडम्बरं विना ।
अब्धिमन्थेऽर्धचन्द्रोऽभूदीशेऽपि कृत्तिवाससि ॥३१॥
स्फूर्जयन्त्युद्भुतस्फूर्तिं विना मृत्युं न केचन ।
कोटिवेधी भवेत् सर्व-धातूनां पारदोऽ मृतः ॥३२॥
परप्राणपरित्राणं स्वप्राणैः केऽपि कुर्वते ।
लवणं क्षिप्यते वह्नौ परदोषोपशान्तये ॥३३॥
दुष्टसंचेष्टिते शिष्टे शिष्टः स्यादतिदुःखितः ।
सविषाणीक्ष्य भक्ष्याणि चकोरः किं न रोदिति ॥३४॥
स्त्रीणामपि सशास्त्राणां परचर्चाकृतौ रतिः ।
साक्षरा सर्ववस्तूनां मानमुन्मानयेत्तुला ॥३५॥
स्वार्थसंसिद्धये देया महत्ताऽतिलघोरपि ।
तृणाय पाणी युज्येते भक्तान्ते दन्तशुद्धये ॥३६॥
कुटिलस्य श्रियः प्रायो जायन्ते कष्टवेष्टिताः ।
विना वेधव्यथां कर्णैः स्वर्णांशोऽपि न लभ्यते ॥३७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्वेगकारिणः क्रूराः सह संवासिनामपि ।
एकास्यस्थाः समीहन्ते दशना रसनाग्रहम् ॥३८॥
मलिनान्निर्मले नाशो निर्मलात् मलिने गुणः ।
पूणिकागुणकृत्तर्कोस्तर्कुस्तस्याः क्षयंकरी ॥३९॥
अकर्म्मण्यपि मर्मज्ञे विफलो विक्रमश्रमः ।
लब्धच्छिद्राणि सिक्थानि चर्व्यन्ते न रदैरपि ॥४०॥
नीचोऽपि स्फूर्तिविख्यातः सेव्यः श्रेष्ठोऽपि नापरः।
तोषरोषक्षमाः ख्याताः पादा वन्द्यास्तु नो शिरः ॥४१॥
दुष्टपुत्राचरणतः पितुः स्यान्मानमर्दना ।
कस्य न क्षालयत्यंह्रीन् पङ्कविच्छुरितान् पयः ॥४२॥
समारचयति प्रायो पिता पुत्रविनाशितम् ।
जलेन क्षाल्यते सर्वं पङ्केन मलिनीकृतम् ॥४३॥
दुष्टः प्रविष्टमात्रोऽपि विपाटयति शिष्टहृत् ।
सौवीरान्तर्गते क्षीरे विशीर्येत सहस्रधा ॥४४॥
परि(र)वित्तव्ययं वीक्ष्य खिद्यन्ते नीचजातिकाः ।
न शुष्यति यवासः किं वारि व्ययति वारिदे ॥४५॥
महान्तो ये महान्तस्ते परैश्चेदपमानिताः ।
अहो मुखे मिखी[१](सी)दानादपि दृष्टिः प्रसीदति ॥४६॥
आस्तां सचेतने रागो दुःखं निश्चेतनेऽपि तत् ।
खण्डनक्षारनिक्षेपपदक्षोदैः कुसुंभवत् ॥४७॥
गुणी श्लाघ्यः सरागोऽपि पर्यन्ते यदि रागमुक् ।
श्वेताञ्चलं हि कौसुंभोत्तरीयवसनं श्रिये ॥४८॥
विना पुंसः स्त्रिया कर्म्म साध्यते साधु न क्वचित् ।
रसना दशनाभावे किं जल्पति किमत्ति च ॥४९॥
कार्याकार्याय कस्मैचिद्वक्रता सरलैरपि ।
जह्वुतां वस्तुनो वेत्ति किं चक्रुः कोणनां विना ॥५०॥
वरं सा निर्गुणावस्था यस्यां कोऽपि न मत्सरः।
गुणयोगेऽपि वैमुख्यं विश्वस्यापि प्रसूनवत् ॥५१॥

---

१. 'तपस्विनी जटामांसी जटिला लोमशा मिसी' इत्यमरः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हृदयान्तर्गुणान् धत्ते कोऽपि केसरपुष्पवत् ।
बहिः कृतगुणो भूयान् दृश्यतेऽथ प्रसूनवत् ॥५२॥
सन्ततौ लक्षसङ्ख्यायामेक एव विराजते ।
तद्विहीनस्थितैरङ्कैः शून्यता प्राप्यते ध्रुवम् ॥५३॥
लब्धे सहायमात्रेऽपि विक्रामन्ति महौजसः ।
विघ्नाली दलयत्याखुवाहनोऽप्याखुवाहनः ॥५४॥
गुणी लघुरपि स्तुत्यः सुमहानपि नागुणी ।
यथेक्षुपर्वणः श्लाघा लघोः स्यान्नालघोस्तथा ॥५५॥
स्थानं सर्वस्य दातव्यमेक ॥५६॥
धटमप्यङ्गवगूहन्ति रङ्गतस्त्यागिनः(?) स्त्रियः।
अमूर्ध्दापि न किं श्रीदः(द-) कञ्चुकः स्त्रीहृदा धृतः ॥५७॥
यावन्न स्वार्थसंसिद्धिस्तावदेव सुहृज्जनः ।
फलमारामिकः प्राप्य पश्य रम्भा निशुम्भति ॥५८॥
सुवृत्तः सुगुणः सोढा परार्थेऽनर्थमात्मनि ।
अन्तर्भूय पुयः स्फारघातादवति देहिनम् ॥५९॥
गुणिनोऽपि गुणाधानं कदापि स्यादवस्तुतः ।
विनाम्लतक्रनिक्षेपान्न दुग्धं दधि जायते ॥६०॥
दृश्यते महतां पङ्क्तौ जनैस्तुच्छोऽपि कार्यतः ।
किं न विन्यस्यते दक्षैर्नाणकान्तः कपर्दिका ॥६१॥
षण्ढेऽप्यर्थप्रदे पुंसि ध्रुवं रज्यन्ति योषितः।
नपुंसकमिदं श्रीदं दृष्ट्या कज्जलमादृतम् ॥६२॥
समं भर्त्रा कुलीनस्त्री सुखदुःखे विगाहते ।
वृद्धिं वित्प(प)दमप्येति नदेन सह पद्मिनी ॥६३॥
दुर्जनैर्दूषिता राजत्यधिकं काव्यपद्धतिः ।
लूकाझलकितं चूतं युज्यते पाकसम्पदा ॥६४॥
प्रथमं स एव साध्यो यद्बलतो रिपुरुपद्रवं कुरुते ।
दशवदननिधनमतिना रघुपतिना जलनिधिरबन्धि ॥६५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईषल्लघुप्रवेशोऽपि स्नेहविच्छ(च्छि)त्ति पण्डितः ।
कृतक्षोभो नरीनर्ति खलो मन्थानदण्डवत् ॥६६॥
----- रसायनं यस्याः प्रयोगे पूर्वपूरुषाः ।
मृता जीवन्ति जीवन्तः पुनः स्युः कीर्तिपीवराः ॥६७॥
महानर्थाय महतामप्यसाधुसमागमः।
पश्य रावणसंसर्गात् बन्धमाप पयोनिधिः ॥६८॥
स्वान्ययोरुपकारी स्याद् ध्रुवं नीचः सदाश्रयः ।
वर्णाश्रया सखी स्वं च पत्रं च कुरुतेऽर्चितम् ॥६९॥
लक्ष्मीरसायनाभावे ये मृताः खलु ते मृताः ।
ये जीवन्ति पुनस्ते स्युर्जीवन्मृतसहोदराः ॥७०॥
सदलाभे कलौ काले श्रीः खेलति खलेषु यत् ।
ततो मन्ये निराधारा न नारी वर्तितुं क्षमा ॥७१॥
कठोरमपि सौख्याय प्रस्तावोच्चरितं वचः ।
याने वामखराराव: शिवायारतिकार्यपि ॥७२॥
सदा सौख्यकरं क्वापि माधुर्यमपि वर्ज्यते ।
अरतिं कुरुते वीणा रणरङ्गाङ्गणे न किम् ॥७३॥
विना भाग्यं वरं वस्तु वृद्धत्वे नोपलभ्यते ।
अब्धिमन्थोत्थरत्नेषु भिक्षैवासीत् पितामहे ॥७४॥
प्रायः श्रिया वृतं वस्तु लभते भुवि गौरवम् ।
श्रीवृक्षपर्णमालेव तोरणे मङ्गलप्रदा ॥७५॥
प्रायः पुसां धनोन्मानात् हृदयोष्मा प्रवर्तते ।
धूमरेखाप्रस्तरः स्यात् वह्नेरिन्धनमानतः ॥७६॥
साकारोऽपि सुवृत्तोऽपि निर्द्रव्यः क्वापि नार्घति ।
व्यक्ताक्षरः सुवृत्तोऽपि द्रम्मः कूटो विवर्ज्यते ॥७७॥
इन्दिरानादृते यान्ति विद्या एव कलङ्कताम् ।
अश्रीदृष्टो भवेद् द्रम्मः साक्षरो बाह्यटङ्कितः ॥७८॥
समाश्रयन्ति सर्वेऽपि० ॥७९॥
अत्यासक्तस्य मूर्ध्दानमधि० ॥८०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदोषपत्यसंयोगे मोदते० ॥८१॥
सदा सर्वस्वदा शक्ता स्थानस्थेऽपि प्रिये प्रिया ।
किं न प्रावृषि वृक्षस्थं बकी भोजयते बकम् ॥८२॥
बाह्यानुरागिणां रागो नाम चापदि नश्यति ।
मुशलो(ले) खण्डनाच्छालिरामशालित्वमुज्झति ॥८३॥
अनुरक्तं स्त्रियामग्र्यं सदा देयं शिवार्थिनाम् ।
भानुरभ्युदयाकाङ्क्षी कुर्यादग्रेसरीं प्रभाम् ॥८४॥
पुरुषेण न मोक्तव्या निराशीकृत्य योषितः ।
त्यजेत्प्रकृतिमात्मापि क्षिप्त्वास्ये रत्नपञ्चकम् ॥८५॥
तेजस्विनोऽपि नारीभ्यः क्षितिः पुंस्त्वस्य जायते ।
कणिकाश्रितदीपस्य दीपिकेति किल श्रुतिः ॥८६॥
आत्मानं प्रकाशयेत् विद्वान् मा निष्पन्नप्रयोजनः ।
राहुर्गृहीतचन्द्रार्को दृश्यते दिवि नान्यदा ॥८७॥
भ्रष्टप्रतिष्ठ(ष्ठ) किल साधुलोकः प्राप्तप्रतिष्ठस्तु कलौ खलौघः ।
ततः खलौघैः खलु खेलति श्रीः कालोचितं केऽपि विचारयन्ति ॥८८॥
गुरुः सुवृत्तः पूर्णोऽपि स्याददानादधो घटः ।
लघुः काणोऽपि कुब्जोऽपि दानादुपरि कर्करी ॥८९॥
महोत्सवोऽथ पुण्यानां विपदे न मुदे भवेत् ।
सर्वानन्ददीपाल्यां सूर्प्पकं ताडयेज्जनः ॥९०॥
मार्यमाणः सुवृत्तोऽपि परमर्माणि भाषते ।
वारिहारिघटीदोष ताडिताऽऽख्याति झल्लरी ॥९१॥
आपद्गतोऽपि संदृष्टः कुलीनः परसौख्यदः ।
मृन्मङ्गलाय मार्गे स्यात् खरारूढापि सम्मुखी ॥९२॥
अकार्यकार्यपि त्यागी महामहिमभूर्भवेत् ।
स्तुत्यो भागेऽपि कन्याया वर्षन् हस्तेन भानुमान् ॥९३॥
निर्लक्षणः क्षणाल्लक्ष्मीमाश्रयस्यापि लुम्पति ।
पतन्कपोतः कुरुते शाखाशेषं हि शाखिनम् ॥९४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्ष्मीभवानि तेजांसि० ॥९५॥
विशीर्यन्ते कदर्यस्य श्रियः पातालपक्त्रिमाः ।
अगाधमन्धकूपस्य पश्य शैवलितं पयः ॥९६॥
परे पाण्डुरितं हन्तुम्० ॥९७॥
मूर्खस्य मुखमीक्षन्ते क्वापि कार्ये विचक्षणाः ।
विना निकषपाषाणं को वेत्ति स्वर्णवर्णिकाम् ॥९८॥
विभवे विभवभ्रंशे सैव मुद्रा महात्मनाम् ।
अब्धौ सुरात्तसारेऽपि न मर्यादाविपर्ययः ॥९९॥
सेवितोऽपि चिरं स्वामी विना भाग्यं न तुष्यति ।
भानोराजन्मभक्तोऽपि पश्य निश्चरणोऽरुणः ॥१००॥

दृष्टान्तशतं समाप्तम् ॥

दृष्टान्तशतक-२

देवा भाग्यवतां पक्षे प्रायो धार्मिकलोकतः ।
चक्रे कोणिकसान्निध्यं चेटकस्य न कौशिकः ॥११॥
रक्षकेष्वपि देवेषु क्रूरकर्म्म विजृम्भते ।
श्रुत्योः कीलव्यथाः वीरः सेहे किं न सुरार्चित : ॥२॥
स्पर्द्धया धर्मकृत्यानि महान्तोऽपि प्रकुर्वते ।
दृष्ट्वा दशार्णभद्रर्ध्दिमिन्द्रोऽप्यागात् तथा जिनम् ॥३॥
व्यापत्तापे कृपास्नेहौ महतामपि नश्यतः ।
कान्तां तथा हि कान्तारे राज्यभ्रंशे नलोऽत्यजत् ॥४॥
महतामप्यहो राज्यतृष्णा मुष्णाति सन्मतिम् ।
स्वभ्रातुर्भरतोऽप्युच्चैश्चक्रं चिक्षेप सन्मुखम् ॥५॥
वैराग्यं जनयत्याशु बन्धुजा विक्रिया सताम् ।
बुद्धो बाहुबलिर्बुद्ध्वा भ्रातरं भ्रान्तसन्मतिम् ॥६॥
दृष्ट्वा बलवती पृष्टिमल्पोऽप्यारभते महत् ।
ययौ किं चमरो नेन्द्रसभां श्रीवीरनिश्रया ॥७॥
कोपाटोपात्कृतेऽप्यार्थे विमृशन्ति महाधियः ।
संजहार पविं शक्रो सुरं ज्ञात्वा जिनाद् दृढम् ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अदत्तेऽपि फलं भावाद्विफलं भाववर्जितम् ।
नवश्रेष्ठि(ष्ठी) ददौ दानं जीर्णस्तु फलभागभूत् ॥९॥
क्षान्त्या तुष्यन्ति तत्त्वज्ञास्तपसापि न तां विना ।
हित्वा सेर्ष्यान् मुनीन् देव्या नेमे क्षान्तिधनो मुनिः ॥१०॥
गिरां दूरेऽस्तु चित्तस्याप्यत्याज्यो निश्चयः सताम् ।
व्युत्सर्गं नामुचत् दीप्रे दीपे चन्द्रावतंसकः ॥११॥
दृढशीलसमृध्दीनां स्वयं तुष्यति देवता ।
पश्य जम्बूगुणैर्देव्याः प्रभावः प्रा(प्र)भवो हृतः ॥१२॥
त्यजन्त्यनार्यकर्म्म द्राक् कुलीनाः प्रेक्ष्य बोधिदम् ।
बुद्धो जम्बूप्रभोर्वाचा प्रभवः किं न चौरराट् ॥१३॥
विना यत्नं महापुण्यप्राप्तिः कस्याप्यहो भवेत् ।
पायसं संगमः क्वाप संगमः क्व मुनेरभूत् ॥१४॥
सत्कृतं सुकृतं कुर्यादल्पस्यापि महत्फलम् ।
किं नाप्तं(प्तः) शालिभद्रेण शालिभद्रेण वैभवम्(वः) ॥१५॥
दानं देवैरपि श्लाघ्यं वेलादत्तं विशेषत : ।
स्मृत्वा दानं ददौ राज्यं मूलदेवाय देवता ॥१६॥
न त्यजन्ति दुरात्मानः स्वभावं भाषिता अपि ।
कालसूकरिकः कूपे क्षिप्तोऽप्यौज्झत्कथं वधम् ॥१७॥
स्वयं(स्वं) कष्टे पातयित्वापि प्राज्ञः पापान्निवर्तते ।
कुठारेणांह्रिमाजघ्ने किं नोज्झन् सुलसो वधम् ॥१८॥
स्फुरन्ति मोहराजस्य मुनीन्द्रेष्वपि केलयः ।
मुञ्चत्यश्रूणि दिष्ट्यान्ते सूनोः शय्यंभवोऽपि यत् ॥१९॥
दूषयन्ति निजां सन्धां कलयापि न सात्त्विका : ।
मोदकान् कृष्णलब्ध्याऽऽप्तान् पर्यस्थापयदाच्युतिः ॥२०॥
सर्वस्यापि समो धर्मो नान्वयं सन्तमीक्ष्यते ।
तत्कुलं नंदिषेणस्य पुण्योत्कर्षश्च तादृश : ॥२१॥
कुलीना व्रतभङ्गेऽपि हितमेवाचरन्त्यहो ।
दश बोधितवान्नित्यं नंदिषेणोऽवकीर्ण्यपि ॥२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुचिरं परिपाल्यापि विफलं व्रतमुज्झितम् ।
पश्याधः कण्डरीकोऽगात्ततो दीर्घतपा अपि ॥२३॥
महद्भिस्तुलनामिच्छन्ननात्मज्ञो विनश्यति ।
स्पर्ध्दया स्थूलभद्रस्य पश्य यन्मुनिरन्वभूत् ॥२४॥
वृथा वाग्विहितो यत्नः कर्म्म भुक्तं विलीयते ।
भेजे तथात्तदीक्षोऽपि भामिनीं मुनिरार्द्रकः ॥२५॥
बलिष्ठैरपि दुर्लङ्घ्या तुच्छापि स्नेहशृङ्खला ।
तस्थौ किं नार्द्रको नध्दः श(शि)शुना तर्कुतन्तुभिः ॥२६॥
निःसङ्गैरपि नोपेक्ष्या शासनस्य तिरस्क्रिया ।
वज्रस्वाम्यपि पुष्पौघमानिनायाऽन्यथा कथम् ॥२७॥
यन्न बुद्ध्यापि सम्भाव्यं धर्मात्तदपि जायते ।
प्रोध्दृतं पश्य चालिन्या कूपादम्भः सुभद्रया ॥२८॥
किं पुत्रैरर्थितैरेकैः श्रिये साध्व्यः सुता अपि ।
सतीमतल्लिकाः पुत्र्यः पुपुवुश्चेटकान्वयम् ॥२९॥
अयत्नात्तत् कदापि स्यात् यत्कष्टैरपि नो भवेत् ।
गौतमानुगमादेव दिन्नाद्यैः प्रापि केवलम् ॥३०॥
दर्शनादपि पूज्यानां जायते पुण्यसन्ततिः ।
हालिको गौतमालोकादभवत् बोधिबीजभाक् ॥३१॥
यत्र कुत्राप्यसम्भूतं दैवात्तदपि जायते ।
क्षिप्ता स्रक्कृष्णया जिष्णौ वव्रे पञ्चाऽपि पाण्डवान् ॥३२॥
प्रायः पापैर्न लिप्यन्ते सदाचाराः कृतैरपि ।
तद्भवेऽपि स्म सिध्यन्ति बन्धुघातेऽपि पाण्डवाः ॥३३॥
न लङ्घन्ते सदाचाराः स्वाम्यर्थेऽपि स्वकं वचः ।
कृत्वा कौरवसाद्राज्यं प्रावात्सुः पाण्डवाः स्युः (वने) ॥३४॥
अवाक्प्रतिष्ठाशीलानां ध्रुवं नाशो धनायुषोः ।
काले राज्यममुंचन्तो विलीनाः किं न कौरवाः ॥३५॥
को बलस्यावकाशोऽस्ति दैवे प्रत्यर्थितां गते ।
तटस्थस्यैव दैत्यारेर्दग्धा द्वारवती पुरा ॥३६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पितॄन् बाल्येऽनुवर्तन्ते शि(श)लाकापुरुषा अपि ।
जरासिंधुभये नष्टौ हरिनीलाम्बरावपि ॥३७॥
दुस्त्यजो विषयासङ्गस्तपस्यपि चिरं स्थितैः ।
दृष्ट्वा राजीमतीरूपं विचक्रे रथनेम्यपि ॥३८॥
कुरुध्वं किमकृत्यानि प्रभुत्वश्रीबलोध्दताः ।
हृत्वा सीतां दशास्योऽपि ययौ नाशंव न किं श्रुतम् ॥३९॥
भेकी यत्स्याच्छिरस्ता(तो)ऽहेस्तन्मान्त्रिकविजृम्भितम् ।
यन्मुनेर्बोधकृत्कोशा स्थूलभद्रप्रभैव सा ॥४०॥
यद्यस्मादत्यसम्भाव्यं कदापि स्यात्ततोऽपि तत् ।
पश्य पण्याङ्गना कोशा मुनिं मार्गे न्यवेशयत् ॥४१॥
घोरमप्यघमुग्रेण तपसा श्वेव नश्यति ।
प्राप्तं चिलातीपुत्रेण स्त्रीवधेऽपि त्रिविष्टपम् ॥४२॥
अपि बुध्दिमतां धुर्यैर्धर्मदम्भो न भिद्यते ।
नीतोऽभयकुमारोऽपि श्रावकीभूय वेश्यया ॥४३॥
भवेत् दुश्चारिणां यत्नः सुमहानपि निष्फलः ।
प्रद्योतोऽकारयद्वप्रं न तु प्राप मृगावतीम् ॥४४॥
पश्चात्तापे सति प्रायो हिते प्रज्ञा प्रवर्तते ।
श्रीवीरप्रतिमां कृत्वाऽपूजयत्स्वर्णकृत्सुरः ॥४५॥
विवेकिनां परद्रव्यं तृणादपि न किंचन ।
दृष्ट्वाऽऽगात् कुण्डलं भ्रष्टं नागदत्तोऽन्यवर्त्मना ॥४६॥
जीवा दुःखेन मोच्यन्ते विषयाद् विबुधैरपि ।
गन्धर्वनागदत्तस्य[१] कियद् बोधे सुरोऽक्लिशत् ॥४७॥
सुराः कुर्वन्ति सान्निध्यं सङ्कटे शीलशालिनाम् ।
जाता सुदर्शनस्याहो शूलिकापि सुखासनम् ॥४८॥
इष्टप्राप्तौ महेच्छानां चेदिच्छैव विलम्बते ।
अवन्तीसुकुमालस्य को लग्नः स्वर्गतौ क्षणः ॥४९॥

---

१. प्रथमभवे वसंतपुरे समृद्धदत्तवसुदत्ताख्यौ मित्रौ । द्वि० भवे धरावासे नगरे सागरदत्त श्रेष्ठी, पत्नी धनदत्ता, प्रथमजीवस्तयोः पुत्र : नागदत्तः । पश्चात् गन्धर्वनागदत्तः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वासामपि शक्तीनां तपःशक्तिर्विशिष्यते ।
लङ्केन्द्रस्यास्खलद् यानमूर्ध्वं वालिमुनेर्गतम् ॥५०॥
यस्तारुण्येऽपि दुःसाध्यः सोऽर्थो बाल्येऽतिचित्रकृत् ।
अन्त्यस्य देवकीसूनोः सत्त्वे को नाधुनच्छिरः ॥५१॥
अप्रकम्प्या स्थितिर्ज्ञाततत्त्वामां(नां) त्रिदशैरपि ।
यक्ष एव विलक्षोऽभूत् न विलक्षस्त्रिविक्रमः ॥५२॥
गुणिनां गौरवं कार्यं वयोपेक्षा न युज्यते ।
वज्रं किं वाचनाचार्यं न बाल्येऽप्यकरोद् गुरुः ॥५३॥
गौरवाय गुणा एव वयस्तत्र न कारणम् ।
वज्रः शावोऽपि पूज्योऽभूत् नैव वृद्धोऽपि तत्पिता ॥५४॥
श्रेयःसर्वस्वहा क्रोधः कृतः प्रान्ते विशेषतः ।
निरार्यापि(निर्याम्यापि) परान् दुष्टं जन्माप स्कन्दकः स्वयम् ॥५५॥
पूर्वं किं न कृतं पुण्यं मा रोदीर्दुर्गतौ गतः ।
दुःखान्मोक्षः शुचा चेत् स्यात् ही शुशोच शशी न किम् ॥५६॥
दुष्कृतानुपदं श्रेयः कृतं सद्योऽघमर्षणम् ।
जगामानशनात् स्वर्गं वीरं दृष्ट्वापि कौशिकः ॥५७॥
स्वाङ्गकष्टं विषह्यापि विधत्तेऽथ हितं महान् ।
अहिदंशव्यथां सेहे वीरस्तद्बोधनोद्यतः ॥५८॥
वल्लभाविप्रलम्भेण धीरोऽपि विधुरो भवेत् ।
श्रीरामः किं न बभ्राम शंसन् सीतां लता अपि ॥५९॥
शस्त्रघातव्यथाभ्योऽपि मानस्यो दुस्सहा रुजः ।
रामस्तथा न चक्लाम युध्दैर्यद्वत् हृतप्रियः ॥६०॥
शनैः स्यात् सम्पदां वृध्दिः क्षणादपि पुनः क्षयः ।
सगरस्याङ्गजातानां का वेला विलयेऽलगत् ॥६१॥
सर्वपापाण्यधः कुर्युः शुध्दधीः क्षणमप्यहो ।
निन्दित्वा प्रान्तकाले स्वं गोशालोऽपि दिवं ययौ ॥६२॥
यद्विधेरपि चित्राय रचयन्ति तदङ्गनाः ।
प्रत्युत श्वसुरं चौरं चक्रे नूप(पु)रपण्डिता ॥६३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिष्ठन्तु प्रचुरा दूरे श्रोतव्याः कापि वाक् सताम् ।
गाथां श्रुत्वार्हतीमेकां रौहिणेयोऽपि सुरव्यभूत् ॥६४॥
प्राणेभ्योऽपि प्रियं धर्मं गणयन्ति यतीश्वराः ।
नाऽऽचरव्यौ कालिकाचार्यो दत्तभीत्याऽनृता गिरः ॥६५॥
अहो मन्ये विडम्ब्येत महर्षिरपि मायिभिः ।
कूटाच्चिटकयोः कीदृग् जमदग्निरजायत ॥६६॥
शक्यते महिमा केन परिच्छेत्तुं महात्मनाम् ।
वृध्दिं विष्णुकुमारस्य वीक्ष्य शक्रोऽपि विस्मितः ॥६७॥
वाग्देहे सुदमे स्वान्तं दुर्दमं महतामपि ।
गतः प्रसन्नचन्द्रोऽपि दुर्ध्यानं दुर्मुखोदितैः ॥६८॥
कारणेऽपि कृतः क्रोधो दीर्घदुःखकृते भवेत् ।
निदानात्पारणाभङ्गेऽग्निशर्माऽभूच्चिरं भवी ॥५९॥
अपराध्यपि शुध्दात्मा स्वं निन्दन् स्यादनिन्दितः ।
असिध्यद्गुणसेनात्मा मुनेर्हेतुरपि क्रुधः ॥७०॥
दाक्षिण्यादपि नालीकं ब्रूयादण्वपि बुध्दिमान् ।
कूटसाक्षिकमात्रेण न्यपतन्नरकं वसुः ॥७१॥
कदर्याणां धनं प्रायो नान्येषामपि शर्मणे ।
गतो नन्दनिधीन् दृष्ट्वा कल्की कल्कपरः क्षयम् ॥७२॥
गुणैर्नार्यो(र्योऽ)प्यसामान्यैः पूज्याः स्युर्महतामपि ।
श्रीवीराभिग्रहे पूर्णे स्तुतेन्द्रेणापि चन्दना ॥७३॥
ऋध्दावपि विचारेण प्रवर्तन्ते विचक्षणाः ।
राज्ञीत्वेऽपि गतोत्सेकं न चित्रकरदारिका ॥७४॥
सम्प्राप्तामपि पापात्मा भोक्तुं न लभते श्रियम् ।
स्वर्गमत्याजयच्छक्रः सङ्गमं वीरवैरिणम् ॥७५॥
हिता(त)बुद्धया कृता पीडाऽप्यहो पुण्यप्रदा भवेत् ।
वैद्यौ स्वर्गं गतौ कृष्ट्वा वीरस्य श्रुतिकीलकौ ॥७६॥
यादृक् तादृगवस्थोऽपि गुरुर्गौरवमर्हति ।
शयालुं शेलकाचार्यं पन्थकोऽक्षामयन्न किम् ॥७७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परां कोटिगतं सत्त्वं निपुणानां मुदे भवेत् ।
स्तुतो देवैर्हरिश्चन्द्रश्चीराक्रर्षी मृताङ्गजात् ॥७८॥
प्राणान् दत्त्वापि रक्षन्ति सात्त्विकाः शरणागतम् ।
वज्रायुधस्तुलां श्रित्वा श्येनात् पारापतं पपौ ॥७९॥
सुबह्वपि तपस्तुच्छफलमज्ञानतः कृतम् ।
अन्येषां मोक्षदात्कष्टादीशाने तामलिर्ययौ ॥८०॥
निष्फलङ्कः कृतो धर्मः स्यादल्पोऽपि महर्ध्दये ।
इन्द्रोऽभूत् कार्तिकश्रेष्ठी सम्यक् श्रध्दानशुध्दितः ॥८१॥
दुष्कराण्यपि कुर्वन्ति कामिनः कान्तयाऽर्थिताः ।
एकस्तम्भं व्यधात्सौधं श्रेणिकश्चेल्लणाकृते ॥८२॥
नर्ते प्राप्यं महत्पुण्यं लोभः स्यात्सहसा महान् ।
यज्जिनो बोध्दुमेत्यश्वं जिनार्चाफलमेव तत् ॥८३॥
अप्राज्ञेनापि मोक्तव्यः श्रुताभ्यासः कदापि न ।
पश्य माषतुषोऽऽप्यासीदनिर्वेदाद्गुणोत्तरः ॥८४॥
पशोरपि पदस्पर्शैर्भूर्विशुध्दस्य पूयते ।
जातमश्वावबोधाख्यं जातमश्वान्न किं वद ॥८५॥
सामान्यस्यापि सत्कर्म्म श्लाघ्यमेवोत्तमैरपि ।
प्रशशंस न किं वीरः कामदेवं दृढव्रतम् ॥८६॥
स्मरेन्मन्त्रं न कः पञ्चपरमेष्ठिनमादरात् ।
शकुन्तिकापि यं श्रुत्वा पश्य जाता सुदर्शना ॥८७॥
ऋतमप्यप्रियं प्रोक्तं शुद्धानामपि दोषकृत् ।
श्रीवीरः शतकस्यापि प्रायश्चित्तमदापयत् ॥८८॥
आर्जवं नाम मर्त्यानां ध्रुवं सर्वोत्तमो गुणः ।
यत्करीन्द्राधिरूढापि मरुदेव्याप केवलम् ॥८९॥
आत्मशुद्धौ गुणा हेतुर्न दीक्षा नैव काननम् ।
प्रापाऽऽदर्शगृहस्थोऽपि केवलं भरतेश्वरः ॥९०॥
साधूनां दर्शनेनापि स्यात् सरागोऽपि निर्मलः ।
नाभूदिलातीपुत्रः किं वंशाग्रस्थोऽपि केवली ॥९१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतातिशायि केषांचित् सच्चरित्रं कलावपि ।
वेश्यावासे रसानश्नन् स्थूलभद्रो जयेत्स्मरम् ॥९२॥
महद्भिश्चरितं वर्त्म गौरव्यं स्यात् श्रुतादपि ।
कालिकाद् वार्षिकं पर्व चतुर्थ्यां कस्य नो मतम् ॥९३॥
असाध्यं साधयन्त्यर्थमुपायेन विचक्षणाः ।
बोधितोऽनार्यलोकोऽपि धर्मं संप्रतिभूभुजा ॥९४॥
पुंसां कालौचितीज्ञानं प्रकर्षाय विशेषतः ।
विजिग्ये रासकान् दत्त्वा विवादी वृद्धवादिना ॥९५॥
यथातथापि स्वावर्णं व्यस्यन्त्येव विपश्चितः ।
मृत्युदम्भादृतं वेश्या पादलिप्तेन भाणिता ॥९६॥
बहुश्रुतत्वं केषांचित्तत्त्वविघ्नाय प्रत्युतः(त) ।
बोधितोऽतिचिरात् क्लेशैरामराड् बप्पभट्टिना ॥९७॥
सद्बुद्ध्या पश्यतां बोधः स्यादल्पादपि हेतुतः ।
धनपालेऽभवद्बोधो दध्नि निध्याय देहिनः ॥९८॥
सन्तस्तत्प्रेक्ष्य कुर्वन्ति शुभं सर्वातिशायि यत् ।
ऋते कुमारपालात् को रुदत्याः स्वं पुराऽत्यजत् ॥९९॥
प्रमाणमुदयः पुंसां कालाकालधिया कृतम् ।
एकच्छत्रं कृतं जैनं श्रीहेमेन कलावपि ॥१००॥

दृष्टान्तशतं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज्ञातकर्तृक समवसरणस्तोत्र

- सं. आ. अरविंदसूरि

पचीसेक वर्ष पहेलां मालगाम (राजस्थान)ना उपाश्रयमां अस्त-व्यस्त पडेलां पानाओमांथी कोई विद्वाने संग्रह करेल स्तोत्रोनां दशेक पानां मळयां. आगळना पत्रो मळ्या नथी अने मळेला पत्रोमां स्तोत्रादिना कर्तानो, संग्रहकर्तानो के लेखनसंवत् व. कशो उल्लेख नथी.

सोळमा के सत्तरमा सैकामां लखायेली प्रतना अक्षरो झीणा पण मरोडदार सुंदर छे. क्यांक क्यांक मार्जिनमां अघरा शब्दोना अर्थो के जाप आदिनी विधि बतावी छे.

दरेक पत्रनी बन्ने बाजु १९-१९ पंक्ति अने दरेक पंक्तिमां ६० जेटला अक्षरो धरावता आ पत्रोमां २२ जेटली कृतिओ छे. एमां एक मोटी शांति (भो भो भव्याः अने एक गौतमस्वामिअष्टक (श्रीइन्द्रभूतिं) सिवायनी कृतिओ अजाणी अने प्रायः अप्रसिध्ध छे. छेल्ली त्रणने बाद करतां बाकीनी बधी संस्कृत कृति छे.

आ संग्रहनी प्रथम कृति समवसरणस्तव (संस्कृत) अहीं प्रस्तुत छे.

समवसरण-स्तोत्रम्

सत्केवलज्ञानमहाप्रभाभिः प्रकाशिताशेषजगत्स्वरूपम् ।
स्तवीमि तं वीरजिनं सुरौघा यद्देशनासद्मनि चक्रुरेवम् ॥१॥

आयोजनं भूमितलस्य सन्मार्जनं व्यधुः वायुकुमारदेवाः ।
तस्यैव गन्धोदकवर्षणेन, रजःप्रशान्तिं विदधुश्च मेघाः ॥२॥

सरत्नमाणिक्यशिलाभिरिद्धं, विधाय तत्राऽचलपीठबन्धम् ।
किरन्ति पुष्पाणि विचित्रवर्णान्यस्योपरि व्यन्तरराजवर्याः ॥३॥

वैमानिका ज्यौतिषिकाश्च तत्र सद्भक्तिभाजो भुवनाधिपाश्च ।
वप्रत्रयं रत्नसुवर्णरूप्यमयं विचक्रुर्द्युतिभासिताऽऽशम् ॥४॥

आभ्यन्तरे रत्नमये विशाले, साले विरेजुः कपिशीर्षकाणि ।
सुरैः प्रक्लृप्तानि मणीमयानि, सद्दर्पणाः किं ननु धर्मलक्ष्म्याः ॥५॥

विमध्यमे रत्नमयानि तानि हैमानि चामूनि बहिस्थवप्रे ।
गव्यूतमेकं धनुषां शतानि, षडेव तेषामियमन्तरुर्वी ॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाहुल्यमेषां धनुषां त्रयस्त्रिंशदेक[श्च]हस्तोऽङ्गुलकानि चाष्टौ ।
लसच्चतुर्द्वारविराजितानां तथोच्चता पंचधनुःशतानि ॥७॥

भूमेः सहस्राणि दशैव गत्वा, सोपानकानां प्रथमोऽत्र वप्रः ।
धनूंषि पंचाशदतः समा भूः, सोपानकानां हि ततोऽयुतार्द्धे ॥८॥

द्वितीयवप्रोऽत्र तदन्तरेऽभूत्, विधिस्तु पूर्वोदित एव सर्वः।
ततस्तृतीयोऽपि बभूव वप्रस्तदंतरं वा मणिपीठबंधात् ॥९॥

इत्थं सहस्रा दश पंच पंच, क्रमेण शालत्रयसंगतानाम् ।
सोपानकानां प्रमितिस्त्वमीषां, करैकमानोन्नति-विस्तराभ्याम् ॥१०॥

प्रमाणमेतत् सकलं विबोध्यं निजैर्निजैरेव करैर्जिनानाम् ।
देहादिवैचित्र्यत एव तेषां, न चान्यथा संगतिमंगतीदम् ॥११॥

भूमितलादूर्ध्वमथार्द्धयुक्तगव्यूतयुग्मं परितोऽधिरुह्य ।
तृतीयवप्रे बहुमध्यदेशे, ज्योतिर्जटालं मणिपीठमासीत् ॥१२॥

विष्कम्भतश्चापशतद्वयं तदौन्नत्यतः श्रीजिनदेहमानम् ।
विरेजुरस्योपरि चारुसिंहासनानि चत्वारि मणीमयानि ॥१३॥

मणीमयच्छंदकसंगतानि चाऽशोकवृक्षं परितः स्थितानि ।
छत्रत्रयेणोर्ध्वगतेन चन्द्रप्रभासमानद्युतिना युतानि ॥१४॥

सुपर्वसञ्चारितपङ्कजेषु, न्यासं दधानः क्रमपङ्कजानाम् ।
सिंहासनं स्वामिवरोऽथ भेजे, पूर्वामुखं पूर्वगिरिं यथांशुः ॥१५॥

ततो व्यधीयन्त च शेषदिक्षु सद्व्यन्तरैस्तत् प्रतिरूपकाणि ।
चतुर्मुखस्तैर्भगवान् विरेजे, चतुर्विधं धर्ममिवोपदेष्टुम् ॥१६॥

तत् पार्श्वयोर्यक्षवरा बभूवुः करे धरन्तो वरचामराणि ।
अभ्रंलिहाः स्वामिपुरो विरेजुर्महाध्वजा रत्नमयोच्चदण्डाः ॥१७॥

पुरो जिनेन्द्रस्य च धर्मचक्रचतुष्टयी चारुरुचिर्बभासे ।
प्रख्यापयन्ती भविनां मनस्सु सद्धर्मचक्रित्वमपूर्वमस्य ॥१८॥

आग्नेयका मुख्य विदिक्षु तिस्रः, प्रत्येकमस्थुश्च सभाः क्रमेण ।
सुसाधवः कल्पसुरांगनाश्च, साध्व्यश्च धर्मश्रवणैक-निष्णाः ॥१९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्योतिःपतीनां भुवनाधिपानां, सद्व्यन्तराणां च विलासवत्यः ।
त्रयोऽपि ते देववरास्ततोऽपि, वैमानिका मर्त्यवराः स्त्रियश्च ॥२०॥

तिर्यग्वराः सिंहमृगाहिबभ्रु-मुख्याः प्रशान्त द्वितीयेऽथ वप्रे ।
संत्यक्तवैरा भगवद्वचांसि, पपुः कणेहत्यकृतोर्ध्ववक्त्राः ॥२१॥

यानानि वप्रे तृतीये बभूवु र्नियंत्रणा नो विकथाभयं न ।
न मत्सरस्तत्र परस्परेणाऽभवज्जिनेन्द्रस्य कट प्रभावः ॥२२॥

आसन् प्रतिद्वारमिहावलम्बि ध्वजानि चञ्चन्मणितोरणानि ।
पंचालिका मङ्गलकानि चाष्टौ, सत्पूर्णकुम्भा वरधूपघट्य : ॥२३॥

माणिक्यवप्रे प्रतिहारूपः सौधर्मनाथो वनजाधिपश्च ।
द्वारेऽवतस्थे भुवनाधिपोऽथ ज्योतिःपतिस्ते तु विचित्रवर्णाः ॥२४॥

सौवर्णवप्रे विजया जया च, जिताभिधानाऽप्यपराजिता च ।
द्वारस्थिताः शस्त्रकरास्तथैताः दौवारिकत्वं विदधुर्जिनस्य ॥२५॥

वप्रे बहिस्तुंबरनामदेवः खट्वांगनामा पुरुषोऽस्ति माली ।
एते प्रतिद्वारमुदात्तदंडाः क्रमाज्जटामंडितमौलयोऽस्थुः ॥२६॥

मणीमयच्छन्दक एव आसीदीशानकोणे जिनविश्रमाय ।
माणिक्यवप्रस्य बहिः सुरौघैर्विनिर्मितः किं नु निजैर्महोभिः ॥२७॥

सद्देशनासद्मनिवृत्तरूपे, बहिस्थवप्रस्य किल प्रदेशे ।
द्वे द्वे भवेतां वरपुष्करिण्यौ, कोणेषु चैका चतुरस्रके स्यात् ॥२८॥

गायन्ति नृत्यन्ति च देवसंघा जिनेन्द्रसंदर्शनतोऽतिहृष्टाः ।
प्रमोदमन्तःस्थमनासवन्तो, धर्तुं विमुञ्चन्ति च सिंहनादान् ॥२९॥

इन्द्रादिकः कोपि महर्द्धिकोऽथ समेति देवो यदि भक्तियुक्तः ।
सर्वं तदैकः कुरुते स यद्वा भक्तेः प्रभुत्वस्य च किं न साध्यम् ॥३०॥

अजातपूर्वः किल यत्र यत्र, महर्द्धिकः कोपि समेति देवः ।
इदं पुनस्तत्र भवेदवश्यं, सुप्रातिहार्याणि निरंतरं स्युः ॥३१॥

जगच्चमत्कारकरैश्चतुस्त्रिंशताभिरामातिशयैः समग्रैः ।
निर्वाणमार्गं प्रथयन् जनानां चिरं जगत्यां जयतात् जिनेन्द्रः ॥३२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स सर्वभाषानुगया जिनेंद्रः सद्भाषया योजनविस्तरिण्या ।
संप्रीणयामास समग्रलोकं कोकं यथाऽहर्पतिरस्तशोकम् ॥३३॥

इत्थं श्रीजिनराजवीर ! भवतः सम्यग् विधाय स्तवं,
यत्पुण्यं समुपार्जितं किल मया भावस्य नैर्मल्यतः ।
तेनाऽयं सकलोऽपि भव्यनिवहस्त्वच्छासने भक्तिमान्,
भूत्वा भद्रशतान्यवाप्य च परामालम्ब्यतां निर्वृतिम् ॥३४॥

इति श्रीसमवसृतिस्तवः समाप्तः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि विनयवर्धनलिखित
एक विज्ञप्तिपत्र

– मुनि रत्नकीर्तिविज

ओळी स्वरूपे प्राप्त थयेल हस्तलिखित पत्रमां आ विज्ञप्तिका छे. ४८ श्लो प्रमाण आ विज्ञप्तिपत्रना आगला भागमां ३८ श्लोक छे. अने बाकीना श्लोको पाछळ भागमां छे.

तपगच्छीय आचार्य श्रीविजयसिंहसूरि महाराजने तेमना श्रीविनयवर्धन नाम शिष्ये लखेलो आ विज्ञप्तिपत्र छे. गुरुभगवंत मेडतामां बिराजमान छे अने पोते थराद चातुर्मास रह्या छे. जिनेश्वरनां चैत्य, जिन प्रतिमा, नगर वगेरेनुं वर्णन तथा चातुर्मा दरम्यान पोते करेला स्वाध्याय वगेरेनी वात तथा पर्युषणा पर्वमां थयेल आराधनादि वात आमां करेली छे.

एकाक्षरवृद्धिए छन्दोबद्ध अने काव्यमय विज्ञप्ति, लेखकनी संस्कृत साहि तथा काव्य अलंकारादि विशेनी विद्वत्तानी द्योतक बने छे. एक-बे-त्रण एम वर्धमानाक्ष लखाएला श्लोकोमां लगभग प्रत्येक अक्षरना बे बे श्लोको छे.

श्लोक ४३मां ४ अक्षर जेटली जग्या छोडी देवामां आवी छे अने क्यां क्यांक अशुद्धि होवाने लीधे मूळ विज्ञप्तिपत्रनी नकल होवानुं जणाय छे. घणा शब उपर अर्थनी स्पष्टता हेतु तेनो पर्याय शब्द मूकेलो छे. जे अत्रे टिप्पणमां आपेल छे. व छंद:शास्त्रना ग्रंथमांथी छंदो मेळववानो प्रयत्न कर्यो छे. ते पण टिप्पणरूपे आपेल तेमां श्लोक १२, १३, १४, १७, २९, ३६, ४३, ४४, अने ४६ आटलाना छंदो प्राप्त शक्या नथी । 'छंदोनां नाम श्लोकमां ज होवा जोईए' एवो पूज्य श्रीशीलचन्द्रस महाराजनो निर्देश एमना कह्या अनुसार छंदनी शोध करता करता वास्तविक पुरवार थ एटले जे छंदो हुं मेळवी न शक्यो ते पण ते श्लोकोमां हशे ज एवी संभावना छे ते आ विषयना विद्वज्जनोने जणाववा विनंति करुं छुं.

विज्ञप्तिपत्रमां छेल्ले 'सं १७०१ वर्षे' एवो उल्लेख छे. जे लेखनकाल जण छे. एटले विज्ञप्तिपत्र ते पहेलां लखायो होय तेम शक्यता छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वस्ति श्रीशं देवाऽधीशं, स्वस्ति श्रीकं स्तोष्येऽस्तेयम् ।
स्वस्ति श्रीदं भव्यध्येयं, स्वस्ति श्रीकारं नाभेयं ॥१॥

अथ वर्ध्दमानाक्षर :

ना कम् द्या कम् ॥१[१]॥
श्री वित् । मेऽर्हन् ॥२[२]॥ यमम् ॥
आद्यो हृद्यः । सद्योऽवद्य ॥३[३]॥
छिन्द्याद्वन्द्यो मेऽस्त्री छंद[४] : ॥४[५]॥ यमम् ॥
आदीशो दीनेशः। नाकीशोऽकीनाश : ॥५[६]॥
यस्नातो नारीभिः । विख्यातस्तं सेवे ॥६[७]॥ यमम् ॥
श्रीसार्वीया काम्या काया । मत्यामेया धीराधेया ॥७[८]॥
पास्तामाया सौवर्णाया । कन्याजेयाऽप्यन्ते हेया ॥८[९]॥
केवलिभाषा धर्मविभाषा । पाप्मजिगीषा शब्दविशेषा ॥९[१०]॥
योजनशक्तिः भाविकभक्तिः । नम्रनृपङ्क्तिः व्याकृतवृत्तिः ॥१०[११]॥
जिनवरचेतः त्रिभुवननेतः । घेनकमनाभिः शशिवदनाभिः ॥११[१२]॥
देवीभिरनिशं नीतं न च वशं । वर्य्यं वसुमती-नाथाऽपचितते ॥१२॥
प्रसृताज्ञा[१३] समाज्ञा कमनी तावकीना ।
प्रसृता हंसमाला धवला[१४] साऽसमासा[१५] ॥१३॥
सानन्दा कृतनन्दा या रामा घननादा ।
सालङ्कारविदोषा सश्लेषा मदलेषा ॥१४।
चित्रपदा नयभेदा [१६]काव्यविशेषविनोदा ।
सज्जनसन्ततिनव्या काव्यकृतां किल [१७]काव्या ॥१५॥[१८]
ततोत्तमप्रमाणिका प्रशस्तरोमराजिका
विहाय तां प्रव्रज्यया स सिद्ध इष्टसिद्धये ॥१६॥[१९] कलापकम् ॥
कामिनीप्रगीतकीर्तनं नाकिनित्यकृत्यनर्त्तनम् ।
विश्वपङ्कपुञ्जकर्तनं देशनापयोदगर्जनम् ॥१७॥

१-२. श्रीवृत्तम् । ३. स्त्रीवृत्तम् । ४. छन्दो वशेऽभिप्राये चेत्यादिवचनात् । ५. स्त्रीवृत्तम् । ६-७ नारीवृत्तम् । ८-९. कन्यावृत्तम् । १०-११. पङ्क्तिवृत्तम् । १२. शशिवदनावृत्तम् । १३. यशः । १४. सज्य । १५. बांधव्या । १६. ग्रन्थ । १७. मति । १८. चित्रपदावृत्तम् । १९. प्रमाणिकावृत्तम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टमी[1] यजतचन्द्रिका[2] गोधिका नयनभद्रिका ।
यस्य तं प्रणतिपद्धतिं मारुदेवमिह सादरात् ॥१८॥[3] यमम् ॥
सुधरणी विहारधोरणी सितसुधा[4]सुधा[5]धराधरा[6] ।
ध्वजपटीमनोरमा रमा जयति यत्र मेदिनीपुरे ॥१९॥[7]
यत्र चकास्त्यप्रीणनचर्चा केसरकस्तूरीविहितार्चा ।
चम्पकमालालङ्कृतमूर्ती[8] रुक्मवती तीर्थङ्करमूर्त्तिः[9] ॥२०॥[10]
कृतसुकृत[11] यतिसभा[12] वृत्ता[13] कृतसु[14] कृतयतिसभाऽऽवृत्ता ।
भवभुवन[15] पतितरी[16] यस्यां दिदिवि[17] कुटनवविमानं वा ॥२१॥[18]
[19]आर्षभिना[20] काऽऽकृतिकरणीया या नगरी नागररमणीया ।
मौक्तिकमाला वसुसुकुमारा सा रमणीवा विलसति सारा ॥२२॥[21]
[22]विपणिततिर्विपणा[23] लिमण्डिता [24]सुविपणिरा[25]पणिकाऽ[26]विखण्डिता ।
शुभमतिमर्त्तविभूतिदायिनी प्रजयति चित्रलतेव यत्र किम् ॥२३॥
यतिनिघसविहायिते[27] भाविनी रमणचरणतामरसाऽलिनी ।
सविरतिरतिरूपगुणोज्ज्वला[28] निवसति पुरि यत्र सदास्तिका ॥२४॥[29]
चकास्ति कास्तिकरमणी रमाकृतिः
सतीव सत्यधृतमतिर्दिताऽधृतिः ।
यदा तदा सुकृतपरायणा परा
प्रशस्तसंस्तवरुचिरा सदाऽऽदरा ॥२५॥[30]
अतिरससरसी सारवाऽसारिका
सजलजलजजीवा परावाटिका ।
परमपुरुषतीर्था क्षमाधिष्ठिता
सफलफलदराजी वरा बर्तते ॥२६॥[31]
जिनपवसतिदण्डता तिथिहानिता
दशवदननिवेशन स्वपराजिता ।
क्षितिजननवियोगता कचबन्धनं
विकिरगणसरोगता रिपुनाशनम् ॥२७॥[32]

---

१. चन्द्र । २. भालम् । ३. भद्रिकावृत्तम् । ४. छोह ? । ५. चन्द्र । ६. हीना । ७. मनोरमावृत्तम् । ८.काया । ९. प्रतिमा । १०. रुक्मवतीवृत्तम् । ११. शुभ । १२. गृह । १३. वर्त्तुला तथा दृढा । १४. पुण्य । १५. जल । १६. नावा १७. स्वर्ग । १८.वृत्तावृत्तम् । १९.भरत । २०.स्वर्ग । २१.अनुकूलावृत्तम् । २२.हट्ट । २३.विक्रय २४.शोभनविक्रेय । २५.वणिक् । २६.पूर्णा । २७.मालतीवृत्तम् । २८.दान । २९.उज्ज्वलावृत्तम् । ३०.रुचिरावृत्तम् । ३१.चन्द्रिकाकृत्तम् । ३२.अपराजिता वृत्तम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्वाहकालकरपीडनमित्यभावे
यस्मिन्नभूद्विषयपूर्वकमन्यथा न ।
श्रीश्रीमति प्रवरपट्टनमेडताख्ये
सिंहोद्धताऽत्र भवदङ्घ्रिरजष्पवित्रे ॥२८॥[1]
यत्र स्थिराद्रनगरे नगतुङ्ग केतनं
श्रीमारुदेव जिननायकसन्निकेतनम् ।
वादित्रदुन्दुभिमृदङ्गकनादनर्तनं
सिन्धूत्थमण्डलमभादिव वृत्तमण्डनम् ॥२९॥
पटुकटुकमतमयमकरनगरं
तदपि सुगुरुगुरुगुणजपनम् ।
जयति मणिगुणनिकरजनभवनं[2]
स्रगिव नरनिगरण इह जगति यत् ॥३०॥[3]
संसृतितारणतत्परधर्ममतिप्रततिः[4]
पात्रसुपात्रयतिप्रति[5]पादनरागवती ।
श्रावक जावड–भावड–सम्प्रतिकृत्यकृतिः[5]
यत्र विभाति सदार्हतसंहतिरश्वगतिः ॥३१॥[6]
सदाऽस्तिका प्रशस्तिका सदास्तिका प्रशस्तिका ।
यथा यथा तथा तथा स्वराऽऽनरालिकाऽऽलिका ।
निरस्तपञ्चचामरा प्रशस्तपञ्चचामरा
ऽबृहद्विकर्णिकाभिधानतस्ततः स्थिराद्रतः ॥३२॥[7]
सहर्षपुलकोल्लसत्करणमेदुरानिन्द्रियो
विधाय मितवन्दनं विधिवदग्रपृथ्वीदृशा ।
ललाटघटितस्वपाणि रचयत्ययं हर्षितो
विनेय विनयादिवर्ध्दन इतीह विज्ञप्तिकाम् ॥३३॥[8]
दिवानाथे नाथे दिदिविनिलयानां शिखरिणी–
श्वरे पद्मानां भास्वति सति विभाते प्रतिदिनम् ।

---

१. सिंहोद्धतावृत्तम् । २. गृहम् । ३. स्रक्वृत्तम् । ४. लता । ५. दान । ६. कार्य । ७. अश्वगतिवृत्तम् ।
८. पञ्चचामरवृत्तम् । ८. पृथ्वीवृत्तम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथा ...... सदसि सुगुरूपासकसभा
सदिभ्यश्रेणीहर्षपुषि सकलामर्षमुषि सत् ॥३४॥[१]
चरमसमयवीरदन्तालयोत्पत्तिसारोत्तरा-
ध्ययनविरचना सवृत्तिप्रियाख्यानमध्यापनम् ।
भवजलनिधितारकादिष्टप्रज्ञापनावाचनं
वरमिति सुकृतं वरीवर्ति श्रीभवन्नामतः ॥३५॥[२]
[३]वृष[४]चन्द्र[५]कुलोत्तमे क्रमागत इति भीत्यभावे
प्रियपर्युषणाभिधानपर्वणि[६]समपर्वरत्ने ।
सुनवक्षणकल्पसूत्रवाचनमुषसि द्विसन्ध्यं [७]
सुतपस्तपनं वनीपकद्रविणविसर्जनं सत् ।
परमार्हतपोषणं मुदाऽभवद् ऋषिपर्वकृत्यं
भवदत्र भवत्क्रमस्मृतिप्रभव[८]वृषप्रभावात् ॥३६॥
तपागच्छाधीशो जयति जगदानन्ददानप्रसक्तो[९]
निजोत्पत्तिक्ष्मायां किल विजयसिंहाह्वयः सूरिराजः ।
जगत्या मत्या वा कृतगजजयस्वीययाथार्थ्यगोत्रा -
दनूचानस्वामी परिवृढनतो मेघविस्फूर्जितायाः ॥३७॥[१०]
स्वाहा[११]जक्षणवेश्मनी[१२]न्द्रभवनस्तम्बेरमाऽश्वादयो
मध्यस्थे शशिचन्द्रिकाहिम[१३]कुभृद्वक्त्रा[१४](च्चक्रा)ङ्गदुग्धादयः ।
पाताले बलिकुण्डनागपतयो जानेऽवदाता यत
स्त्रैलोक्ये यशसस्तवैष गणभृच्छार्दूलविक्रीडितम् ॥३८॥[१५]
श्रीनाथूवंशनक्षत्र[१६]सृतिदिनमणीनां कीर्तिललना
राढापूर्णात्मजैवातृकघृणिकमनी येषामतिरसात् ।
अष्टाऽऽशायां[१७] प्रगीता मनुजसुवदना योषाभिरभवत्
श्रोतुं जानीमहे किं जगति किल विधाताऽष्टश्रुतिरयम् ॥३९॥[१८]

---

१. शिखरिणीवृत्तम् । २. नाराचवृत्तम् । ३. धर्म । ४. चन्द्रशब्दः द्योतक : । ५. प्रशस्य । ६.सर्व । ७. वेलम् । ८.पुण्य । ९. तत्परः। १०. मेघ विस्फूर्जितावृत्तम् । ११. देव । १२. गृह । १३. पर्वत । १४. हंस । १५.शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् । १६. नभः । १७. दिशि । १८. सुवदनावृत्तम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिग्जये पराजितो रवी[१] रसाधराधिपो
ऽपरो विपक्ष आनतार्हतप्रसन्नचित्त ते ।
ज्वलत्प्रतापभूघनेन [२]मन्दरोऽदरं ग्रहा-
धिभूरपास्तवीर्यपक्षमूलमद्य मूर्च्छितो
रथस्थितो भ्रमन्नजस्रमस्त्यपीष्टवृत्तपूज्य ॥४०॥[३]
तुच्छाऽस्वच्छाऽन्यगच्छाधिपतिगजघटामत्तमातङ्गशत्रो[४] ।
[५]पौंस्नस्त्रै[६]णोपदेशाऽमृतशमितजगत्पापतापात्रिलोक्याम् ।
नित्यश्लोकप्रतापौ शशिरविमिषतस्ते ततस्तेजपुञ्जौ
श्रीमानृ[७]ग्रामगीतौ नरधृतशिरआज्ञा[८]गुरुस्र[९]ग्धरायाम्[१०] ॥४१॥
नायकदेतनूजनन ! वंशरत्न ! [११]वदनं गुणालयमहो ।
भद्रकरं प्रभाप्रसरपेशलं जयति ते गुरो वरतरम् ।
येन जितं वने [१२]कुवलयं गतं सृजति सत्तपः प्रतिदिनं
आगलमग्नमत्र[१३] भवदाननोपमितिसिद्धयेऽशनजलम् ॥४२॥[१४]
चकास्ति कनकावदातमतुलं शरीरं गुरो ! तावकीनं मुदा
सदार्हतयतीशितोऽवनतम[१५] र्तवृन्दारक स्पर्ध्दया येन वा ।
जितो विषमसायकोऽत्यसुखदायकस्तीव्रकोपादनङ्गीकृतो
यतो हि महता सह....... विग्रहोऽनर्थकार्थं भवेत् ॥४३॥
सौभाग्यालय ! वीतविभ्रमगते ! गम्भीररत्नाकरप्रसरत्तलं
लब्धाऽऽप्ताऽऽगमपारसिद्धविदुषा मेमीयते तथापि[१६] तव प्रभो ! ।
सत्पाटीगणितार्थदक्षकविना ताराऽन्तरीक्षे[१७] गुरु(परि)पन्थिभि -
[१८]र्विश्वे लान्त्यमिवा ङ्गुलैर्गजधरैर्न[१९] क्षत्रपद्येव लब्धिगुरो गुरो ॥४४॥
सम्प्रति सिद्धार्थाङ्गज[२०] [२१]दन्तालयवचन[२२] सृतिचरण[२३] करणरते
तत्रभवत्पादोदक[२४] जन्मद्वयमुषसि किल नमति नरनिकरः ।
यो भवतां तस्याऽवसथ[२५] प्राङ्गण[२६] इह विलसति वरविबुधनगो[२७]
[२८]ऽक्रोञ्चपदा पद्मापि मरुद्रत्नमसमगुणगणकलित ! वरमते ! ॥४५॥[२९]

---

१. पर्वत । २. मेरुः । ३. पञ्चचामरवृत्तम् । ४. हस्ति । ५. नरेभ्यो हितम् । ६. स्त्रीभ्यो हितम् । ७. स्त्री । ८. बृहत् । ९. माला । १०. स्रग्धरावृत्तम् । ११. जन्म । १२. पत्रम् । १३. पूज्य । १४. भद्रकवृत्तम् । १५. नर । १६. अपि निश्चियार्थे । १७. बृहत् । १८. समग्र । १९. नभः । २०. वीर । २१. मुख । २२ मार्ग । २३ चारित्र । २४. पद्य । २५. गृह । २६. जगति । २७. कल्पवृक्षः । २८. श्रेष्ठ । २९. क्रौञ्चपदावृत्तम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीभट्टारकाऽनुत्तरकभट्टारकवरविजयदेवसूरिसदन्तिके
योनूचानरत्नं विजयसिंहो गुरुगुणर[2]सजरोहणाचलसंस्त[3]वः ।
पट्टालङ्कृतिस्तीर्थपतिवीरक्रमणकजसविधे यथा किल भासते
पात्रं गौतमोऽयं गणधरो मानुषकलुषपवनाशने भुजगेरितम् ॥४६॥
इति गुणगणराजितानां मतानां हितानां हि तेषां प्रसादान्वितानां सतां
निजकरणपरिच्छद[4]क्षेत्रवार्त्तप्रवृत्ति[5]प्रतीतोऽत्र लेखो विशेषेहितः ।
मम हरिषक[6]रालिकाम्भोदसच्चण्डवृष्टि[7]प्रपातो यतोऽतो भविष्यत्यरं
मतिमितगुरुभि[8]र्गरीयस्तरैस्तातपादैः प्रसद्य प्रसाद्योऽनवद्यो[9]हितः ॥४७॥[10]
शिशुनमतिरवधार्यस्त्रिसायं तथा तातपादाब्जनिर्ग्रन्थभृङ्गावलीना-
मनुनमति-नमती मे प्रसाद्याविहत्यानगारार्हतानां प्रणामोऽवधार्य ।
वितथविततकवित्वाक्षरार्थभ्रमौचित्यबन्धप्रबद्धं मया मौर्ख्यतो यत्
[11]प्रचितक[12]सहनपूज्यैश्च सोढव्य[13]मूर्ज्जाख्यमासे सितोऽलेखि लेखोऽथ भद्रम् ॥४८॥[14]

सं. १७०१ वर्षे ॥

---

१. उत्तम । २. मणि । ३. वर्णना । ४. वपुः । ५. सहितः । ६. वृक्षः । ७. प्राप्तः । ८. बृहस्पतिः । ९. हितकृत् । १०. चण्डवृष्टिप्रपातवृत्तम् । ११. याऽऽप्त । १२. क्षमा । १३. कार्तिक । १४. चण्डवृष्टिप्रपातवृत्तम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टमहाप्रातिहार्यवर्णनः अपभ्रंशभाषामय आठ पद्य

तीर्थंकर परमात्माना आठ महाप्रातिहार्यनां वर्णनो स्तोत्र स्तवन वगेरेमां पुष्क मळे छे. सामान्य रीते आवा वर्णनो संस्कृत अने प्राकृत ग्रन्थोमां अने ते ते भाषामां मळे

अहीं आपवामां आवेला आठ पद्योमां आठ महाप्रातिहार्यनुं वर्णन छे ते अपभ्रं भाषामां छे अने वत्थु(वस्तु) छंदमां छे. आ छंदमां अपभ्रंशभाषामां पुष्कळ साहित्य मळे आ आठ पद्य एक पानामां आगळ-पाछळ थईने छे. अमे राजस्थान तरफना विहारमां हता त्य एक गाममां आ प्रकीर्ण पानां जोवामां आव्या तेमां खूब झीणा अक्षरे आ आठ पद्य जोयां अ तुरत कागळमां उतारी लीधां. आजे ए अहीं प्रकाशित करवानो अवसर मळ्यो छे.

अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासनं च ।
भामण्डलं दुंदुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वरस्य ॥
अहीं पण आज क्रममां वर्णन थयुं छे.

अशोक वृक्ष :

पहेलुं अशोकवृक्ष छे तेना वर्णनमां थोडां शब्दमां सुंदर चित्र उपसाव्युं छे.

अशोकवृक्ष ऊंचुं, गोळ, मृदुकोमळ वैडूर्यमणि जेवा पांदडावाळुं. वळी ते पुष्पमां जे मकरन्द छे ते भ्रमरवृन्द वडे पीवाई रह्यो छे.

पवनना आंदोलन वडे ज्यारे अशोकवृक्ष डोलतुं होय त्यारे जाणे ते हर्षवश नृ न करतुं होय तेम लागे छे. आवुं अशोकवृक्ष सूर्यना किरणोने रोकतुं महावीर स्वा भगवाननी उपर शोभी रह्युं छे.

पुष्पवृष्टि :

जळमां उपजतां अने स्थळमां उपजतां विविध वर्णनां लाल लीलां पीळां अने गुलाबी आम पांच वर्णनां सुगंधी पुष्पोनी वृष्टि देवो करतां रहे छे. आजानु-ढींच सुधीनो ढगलो ए पुष्पोनो थतो होय छे. ए पुष्पोनी सुगंधथी खेंचाईने आवेला भ्रमरो प त्यां छे अने ए बधां पुष्पोनां वृन्त-डींटडां नीचे अने पांखडी उपर होय छे. जाणे जिन दर्शन करवा माटे आम मुख उपर न राख्या होय तेम शोभे छे.

दिव्यध्वनि :

हर्षथी विकसित वदन नयनवाळां हरणियां-ए वाणी ए ध्वनि सांभळी रह्यां ए दिव्यध्वनिनो गंभीर घोष पाणीथी भरेला मेघना गर्जारव जेवो लागतो हतो. अज्ञान तिमिरथी अंध बनेला भुवनना भाव प्रकट करवामां सज्ज एवी दिव्यध्वनि दशे दिशा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रसरी रही. जाणे मोहनी गाढ निद्रामां डूबेलाने जगाडवा माटे ज न होय तेम ते निरंतर दिव्यध्वनि चालु रहे छे.

चामर युगल :

अत्यंत श्वेत एवा चामर प्रभुजीनी बन्ने बाजु ढळी रह्या छे. ए चामरनी सफेदाइ जोतां जाणे क्षीरसमुद्रना तरंग, शरद ऋतुना चन्द्रना किरण सरखा उज्ज्वळ ए वाळ हता. तेनो हाथो माणेकजडित सुवर्णमंडित हतो. सुरेन्द्र महाराजना करकमलमां ते शोभतां हतां. जाणे प्रभुना गुणगणथी प्रमुदित थईने वारंवार नमतां न होय तेम ते शोभी रह्या छे.

सिंहासन :

जातिवंत सुवर्णथी घडायेलुं मणिथी सुशोभित, ऊंचुं, पहोळुं, वच्चे कंईक साकडुं सिंहासन शोभतुं हतुं. निरुपम कांतिवाळुं जाणे रूपांतर पामेलो मेरु पर्वत न होय तेवुं सिंहासन हतुं.

भामंडल :

आकाशमां एक पण वादळ न होय अने सहस्रकिरण वाळो सूर्य होय तेवुं भामंडल शोभतुं हतुं. वीरभगवानना मस्तकनी पाछळना भागमां ए रहेलुं पृथ्वी उपरना अंधकारने दूर करनारुं हतुं. सूर्ये जाणे जिननी सेवामां पोताना किरणो न मोकल्या होय तेवुं देदीप्यमान झळहळतुं भामंडल शोभतुं हतुं.

देवदुंदुभि :

देवदुंदुभिनो मधुर छतां मोटो अवाज अने तेना पडघाथी आकाश भराई गयुं. ते सांभळीने लोकोना कान चमकी जतां अने डोक ऊंची करीने जोतां. पशुगण पण कांपती आंखे ए सांभळतां अने दूर दूर जंगलमां चरतां होय तोय जिननी पासे बोलावती होय तेवी देवदुंदुभि शोभती हती.

छत्रत्रय :

मोटा मोतीनी माळा जेमां शोभी रही छे ते छत्रत्रयीनो विस्तार एवो छे के जाणे शरदना चन्द्रनुं मंडळ न होय तेवा छत्र हता. वळी कांतिमान, अने सुरगंगाना तरंग जेवा उज्ज्वळ हता. आवा त्रण छत्र आकाशमां शोभतां हतां.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(वस्तुछंद)

तुंगु वट्टलु मसिणु थुड-नालु
वेरुलिय - समु बहल-दलु घणु विसालु सम-साल-सालिउ।
मयरंद-लालस-भसल-पिज्जमाणकुसुमोह मालिकउ
पवणंदोल-पवाल-करु हरिसिं नच्चइ नाइ
वीरह उवरि **असोयतरु** रविकरपहहरु भाइ ॥१॥
विट-संठिय-सुरहि-गंधड्ढ
जलथल-यरु संभवह पंचवन्न-सुरगण-विमुक्किय
आजाणु उस्सेह तहिं, गंध-लुध्ध-भमरहं अचुक्किय
सहइ समंता जिणवरह वियसिय **कुसुमह** वुट्ठि।
जिण-दंसणि उप्फुल्ल-मुह नाइ पयासइ तुट्ठि ॥२॥
हरिस-वियासिय-वयण-णयणेहिं
हरिणेहिं सुय अइ रसिण विजिय-सजल-जलवाह-गज्जिय
अन्नाण-तिमिरंतरिय-भुवण-भाव-पायडण सज्जिय
जिण-झुणि पसरइ दस दिसिहिं तिहुअण-जणिय पणाम
नं गुरुतम-निद्दोवहय जण-पहिबोहण काम ॥३॥
खीरसायर-लहरि-डिंडीर
पंडुरयरु सरय-ससि-किरण-सरिस-चिहुरोह-सुंदरु।
माणिक्क-मांडिय-पवर-कणय-डंडु रंजिय-पुरंदरु
सुरवइ-कर-कमलट्ठिय **चामर जुयलु** ढलेइ
नावइ गुणगणु मुइय-मणु पुणु पुणु जिणह न मेइ ॥४॥
जच्च-कंचण घडिउ मणिचित्तु
उत्तुंगु वित्थर पवरु नमिय मज्झु पेरंत उध्धरु
बहुचित्त-विछुरिय-तणु पडिम-रुववर-सीह-सिंधुरु
सीहासणु तिहुयण-गुरुहु सोहइ निरुवमकंति
नं रूवंतरि मेरुगिरि, धारइ तणु गुरुभत्ति ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब्भ-वज्जिय-गयणि
रवि-किरण-नियरो व्व परिभासुरइ
विप्फुरंत-तणु-किरण-रइयह
नह-विवर-परिसक्किरह तिमिर-नियर-महि-वलय-मइयह
पसरंतह भामंडलह वीरह निरुवम साहेज्ज
जिणसेवहिं पट्ठविउ दिणयरि नियकिरणोहु ॥६॥
पउर पडिरव भरिय नह विवर
बहिरीकय-जण-सवण गुरु चमक्क-उक्कन्न-वयणेहि
आयन्निय-पसुगणेहि कंपमाण-तणु तरल-नयणेहिं
सुरदुंदुहि वज्जंत तहिं गुरु निग्घोस महंत
हक्कारइ जिण पासि किर सुर-नर दूरि चरंत ॥७॥
थूल-नितूल-विमल-विललुंत
मुत्तावलि मालियह सरय-सोम-मंडल-खन्नह
मणि-खंड-परिमंडियह हरतु सारगिरी-सरिस-वन्नह
तिहुयण पहु छत्तत्तयहं सोहइ उज्जलकंति
नं सुरसिंधु-पवाहु नियफेणहं संठियपंति ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोमतिलकसूरिविरचितं करहेटकपार्श्वनाथस्तोत्रम्

–सं. विजयमुनिचन्द्रसूरि

तपागच्छीय आचार्यश्रीसोमतिलकसूरिजीए रचेल आ स्तोत्र एक प्राचीन फुटकर पानां धरावती प्रतिमांथी प्राप्त थयुं छे. प्रतिनी लखावट जोतां ते संभवतः १६मा शतकनं होवानुं लागे छे. आ स्तोत्र अप्रगट होवाथी अत्रे प्रकाशनार्थे प्रस्तुत छे.

स्वामिन् ! नमन्नर–सुरा–ऽसुरमौलिमौलि–
रत्नप्रभापटलपाटलितांऽह्रिपद्म ! ।
पार्श्वप्रभो ! भुवनभासनभास्कर ! त्वा–
मानौम्यमानबहुमानमहं महेश ! ॥१॥

श्री**अश्वसेन**नरनाथकुलावतंस !
वामावरोदरसरोवरराजहंस ! ।
भव्याऽङ्गिमानसमहार्णवपूर्णचन्द्र !
कस्त्वां न नौति जिननायक ! वीततन्द्रः ॥२॥

विश्वत्रयार्तिहरणप्रवणप्रवीण !
विश्वत्रयीमथनमन्मथभावहीन ! ।
विश्वत्रयीसकलमङ्गलदानदक्ष !
विश्वत्रयोद्धरणधीरसरोरुहाक्ष ! ॥३॥

संसारवारिनिधितारणयानपात्र !
त्रायस्व विश्वमखिलं गुणरत्नपात्र !
कीर्तिप्रतापपरितर्जितपुष्पदन्त !
पार्श्वप्रभो ! भुवनभूषणपुष्पदन्त ! ॥४॥

देव ! त्वदङ्गमहसा सहसा जितेव ,
सूर्याङ्गजा जलभरं वहते हतेर्ष्या ।
त्रैलोक्यलोकमहितस्य हितस्य सर्व–
सत्त्वेषु ते कथय को न हि किङ्करोऽस्ति ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यानानलेन भवता भुवनाधिनाथ !
कर्मेन्धनं निधनमाप्यत **पार्श्वनाथ** !
त्वन्मूर्ध्नि नागपतिसप्तफणामिषेण
तेनेव धूमलहरी लसति प्रकामम् ॥६॥

स्वामिन्नशोकतरुरेष जनानशोकान्
धर्मं दिशन्निव रवैरलिनां करोति ॥
प्राज्यप्रभावभवनस्य भवादृशस्य ,
सङ्गान्न के विमतयोऽपि भवन्ति तज्ज्ञाः ? ॥७॥

मन्ये पुरस्तव विकस्वरपञ्चवर्ण-
जानुप्रमाणकुसुमप्रकरच्छलेन ।
विश्वाधिपस्य भवतो भयतः स्मरेणा-
ऽऽमुच्यन्त पञ्चविशिखान् सविषादमीश ! ॥८॥

दोषाकलङ्कजडताश्रयिणः सुधांशोः ,
साम्यं कथं भवतु ते वदनस्य देव ! ।
नित्यं श्रियः कुलगृहस्य हि यस्य गाव-
स्तापं जनस्य शमयन्ति सुधायमानाः ॥९॥

त्रैलोक्यलोचन ! सुधाञ्जनचारुरूपं ,
चन्द्रांशुचारुचमरावलीरुत्तरन्ती ।
मौलेर्गिरेरिव नदी जलपूरपूर्णा ,
पार्श्वद्वयेऽपि तव देव ! विभाति शुभ्रा ॥१०॥

भित्त्वा विभो ! नर-सुरा-ऽसुरसंसदोऽसौ ,
सिंहः सुवर्णमणिनिर्मितमासनं ते ।
संश्रित्य विज्ञपयतीव यथा भवाब्धे-
र्मां नाथ ! तारय पशुं पशुजात्युपेतम् ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्भावयामि भवतस्तनुसम्भवेन ,
भामण्डलेन सितिना जिन ! भासुरेण ।
पूर्णं नभस्तलमिदं सकलं यदीति ,
नो तत्कथं मरकताभमिदं बभूव ॥१२॥

व्योमस्थितस्त्रिदशदुन्दुभिरेष हृद्यः ,
पुंसां नदन्निति विभो वदतीव नित्यम् ।
भो भो ! जगत्त्रयपतिर्जगदर्थवेदी ,
नाऽतः परोऽस्ति भुवने तदमुं श्रयध्वम् ॥१३॥

लोकत्रयैकतिलकं प्रणमन्त्यमुं ये ,
ते कीर्तिकेवलशिवत्रयमाश्रयन्ते ।
कुन्देन्दुसुन्दरतरं त्रिजगज्जनानां ,
छत्रत्रयं तव निवेदयतीव देव ! ॥१४॥

कुन्दावदातयशसं भगवन् ! भवन्तं ,
भिन्नेन्द्रनीलमणिनिर्मलकायकान्तिम् ।
कारुण्यपुण्यहृदयं हृदि यो बिभर्त्ति ,
यान्ति क्षणेन विपदः क्षयमीश ! तस्य ॥१५॥

इति श्रीमत्**पार्श्व**क्षितिवलयविख्यात**करहे**-
टकस्याऽलङ्कार ! त्रिभुवनपते ! नम्रशिरसाम् ।
सभावं स्तोतॄणां विदलय महामोहपटलं ,
घनं कर्मव्रातं हर वितर निर्वाणपदवीम् ॥१६॥

पूज्यभट्टारकप्रभुश्री**सोमतिलक**सूरिविरचितं
करहेटकमण्डनश्रीपार्श्वनाथस्तोत्रम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री भंवरलाल नाहटा (कलकत्ता) का पत्र

१. अनुसन्धान-१२

श्रीकल्पना शेठ द्वारा संपादित **ज्ञानधर्मकृत** दामन्नक कुलपुत्रक रास में रचयिता के परिचय को स्वयं लेखकने लिखा ही है। इन ज्ञानधर्मजीके प्रशिष्य ही सुप्रसिद्ध उ.श्री देवचंद्रजी महाराज थे जो विश्वविश्रुत उच्चकोटिके आध्यात्मिक और शास्त्रवेत्ता विद्वान थे। स्थानकवासी साध्वी आरतीजीने उन पर थीसिस ग्रंथ लिखकर डाक्टरेट प्राप्त की हे।

चोथा लेख श्रीसहजकीर्त्ति उपाध्यायकृत श्रीपार्श्वनाथ् महादंडक स्तुति हे जो श्रीप्रद्युम्नसूरि महाराजने प्रकाशित किया है। ये उच्चकोटिके विद्वान थे।

जेसलमेर-लोद्रव पार्श्वनाथ तीर्थमें शिलापट्ट पर खुदा हुआ शतदलपद्म यंत्र विशिष्ट कृति हे जो जैन लेखसंग्रहमे सचित्र प्रकाशित हे। (श्रीपूरणचंद्रजी नाहर के जैन ले. सं. भाग ३ में है।)

उपाध्याय सहजकीर्तिकी प्रचुर रचनाऐं उपलब्ध हे, जिसकी सूचि यहाँ दे रहा हूं। यदि आवश्यक हो ते प्रतियां कहां उपलब्ध हे वह भी सूचित कर दिया जायगा।

१. वैराग्यशतक
२. ऋजु-प्राज्ञ व्याकरण
३. फलवर्द्धि पार्श्वनाथ महाकाव्य
४. अनेकशास्त्रसारसमुच्चय
५. बृहत्कल्पसूत्र-अर्थ
६. निशीथसूत्र-अर्थ
७. कल्पसूत्र टीका-कल्पमंजरी
८. दशवैकालिक टीका
९. वन्दित्तुसूत्र बालावबोध
१०. व्यवहार सूत्र-अर्थ
११. गौतमकुलक टीका
१२. यशोधर प्रबन्ध
१३. प्रवचनसार बालावबोध
१४. १२ व्रत टिप्पण
१५. शब्दार्थ व्याकरण
१६. सिद्धशब्दार्णवनाम कोश
१७. कलावती चौपई
१८. देवराज-वत्सराज चौपई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. नरदेव चौपई
२०. राजप्रश्नीय उद्धार
२१. सागरशेठ चौपई
२२. शत्रुंजयरास सं. १६८४
२३. शांतिनाथ वीवाहमंडल-१६७९
२४. सुदर्शन चौपई
२५. हरिश्चंद्र रास
२६. उपदेश छत्तीसी
२७. नीतिसवैयाछत्तीसी
२८. व्यसनसत्तरी
२९. जेसलमेर चैत्यपरिपाटी-१९७९
३०. पार्श्वनाथ महादंडकस्तुति (अनुसंधान-१२)
३१. शतदलपद्मयंत्र-लोद्रवपुर शिला पट्ट पर

दामन्नक कुलपुत्रक रासमें प्रूफसंबन्धी अशुद्धियां है या मूल प्रतिकी ही है यह तो कहा नहीं जा सकता, पर जेरोक्स मंगाके देखें।

खंजनी परि बरसी रहयउ-खंजनी का अर्थ ढोलिया लिखा, तो खंजकी भाँति बैठे रहने-अर्थ होगा, खंज का अर्थ क्या होगा? ना - नी - ने क्रिया है।

रीहड़ वसइ नहीं पर रीहड़ वंशइ चाहिए। रीहड़ गच्छका नाम नही, किन्तु रीहड़ ओसवाल जातिमें गोत्र हे, जिसके घर अभीभी जोधपुरमें है। श्रीजिनचंद्रसूरिजी इस गोत्र के थे।

'सखरउ' का अर्थ साकर-खांड लिखा सो गलत है। सखरा का अर्थ अच्छा-बढिया या उत्तम होगा।

दिनरउ - दिनरउ अर्थात् दिन की (रा - री - रे - क्रिया)

२. अनु-१२ में जो मुनिश्री भुवनचंद्रजी का पत्र प्रकाशित हे, उसके सम्बन्धमें जिनपतिसूरि पंचाशिका जो प्रकाशित हुई हे उसके विषयमें विशेष जानकारी-

बीकानेर के बडे उपाश्रयस्थित ज्ञानभंडारमें जिनभद्रसूरि स्वाध्यायकी पुस्तिका की एक सूची देखी गई, जो अज़ीमगंज (बंगाल) के ज्ञानभंडारमें सं.१४९० की लिखी हुई महत्त्वपूर्ण प्रति थी। हम उसे देखने के लिए सं.१९९२ में अज़ीमगंज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गए तो सूचीपत्रमें देखा नाम नहीं मिला, एक ही दिन ठहरे थे। बाद में वि.सं. २०२१ में कलकत्ता बडे मंदिरजीके १५० वर्ष प्रतिष्ठा का होने से सार्द्धशताब्दी मनायी गई तब अज़ीमगंज से ५ हस्तलिखित व सचित्र ग्रंथ श्रीमोतीचंदजी बोथरा लाये, मैंने वे देखे नहीं थे। अत: वापस भेजने के पूर्व रातमें उनका फोन आया कि यहां प्रदर्शनीमें जो ५ ग्रंथ आए हमें कब वापस भेजना हे, हम तो कुछ समझते नहीं, आपने देखे कि नहीं ? मैं तत्काल रातमें ही जाकर वे ग्रंथ ले आया। अपने मित्र श्रीलक्ष्मीचंदजी शेठको फोन में कहा – जिनभद्रसूरि स्वाध्याय ग्रंथ मिल गया है, तो उन्होंने कहा – सुबहमें आप मेरे पास भेजिए, में उसके फोटो उतार लूंगा। उन्होने फोटो उतारके भेजे। पूरे ग्रंथके सभी फोटो मेरे पास है। मैंने जैनभवनमें रखवा दिए पर मेरे उस समयकी नकल की हुई कापीसे उतारके पूज्यश्री शीलचन्द्रविजयजी महाराज को भेजे थे वे प्रकाशित किये गए। अभी वे फोटोग्राफ ललवानी गणेशजीके देहान्त के बाद में खोजकर ले आया, उससे मिलाने पर कुछ संशोधन हो सकता है।

मूल प्रति अज़ीमगंज भंडारसे चोरी हो गई।

३. अनुसंधान – १३ मिला।

इसमें कामरूप पंचाशिका पंच अशीति गाथा के अर्थमें हे या जिनभद्रसूरि स्वा. पुस्तिकाके जिनपतिसूरि पंचाशक गाथा के अर्थ से ? तथा यतिशिक्षा पंचाशिका भी ५० गाथा वाली है। क्या कारण ? हैडिंगमें पंचासिया नहीं है।

कामरूप देश तो आसाम है, जहाँ कामाख्या देवीका तीर्थ पहाड पर है। गौहाटी में पास ही है। इसमें विषय योग–स्वरोदय आदि से सम्बन्धित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविविल्हरचित-भीमछंद (अणहिलपुर)

-सं. भंवरलाल नाहटा

यह भीमछंद विल्ह कविकी रचना है, जो अणहिल पाटण के रहनेवाले थे। आबू विमलवसहीके आगे जो छोटा मंदिर है, वह इन्हीं के द्वारा निर्मापित होना चाहिए। भीमको विमलकुलितिलक लिखा है। विमल जो पोरवाल थे, विमल का अर्थ अगर विमलमंत्रीसे न लेकर शब्दार्थ करें तो ये किस ज्ञाति-वंशके थे ? हमें ६० वर्ष पूर्व उ.सुखसागरजी महाराजसे वाडी पार्श्वनाथ मंदिरके शिलालेख का फोटो मिला है। वह इन्हीं के द्वारा निर्मापित होना चाहिए, शिलालेख का फोटो पास में यहां ही है, यदि प्रकाशित हो तो भीम के वंशजों के नाम देखे जा सकते हैं।

भीम सम्बन्धी कवि देपालकृत रास श्रीधुरंधर विजयजी म.सा. ने प्रकाशित किया है। भीम केसवा शाह लिखा है।

दादाश्री जिनकुशलसूरिजीका पट्टाभिषेक पाटणमें १३७७ में हुआ था, उस समय वहां भयंकर दुष्काल था, उस समय अकाल पीडित के लिए प्रचुर अर्थव्यय किया था।

वाडी पार्श्वनाथ मंदिर की प्रतिष्ठा १६५२ के बाद श्रीजिनचंद्रसूरिजीके लाहोर से लोटते पंचनदी साधन करने के पश्चात् उन्हीं के आज्ञानुवर्ती मुनियों द्वारा पाटणमें की गई है।

कविविल्हरचित-भीमछंद

- नउं।

अवरराय जय मगउं सोलह, तोय न पहुंचइ भीम तंबोलह ॥१॥

तरे पट्टणह नयरिए कोइ सुणियइ, जरे केसवा साह कउ भीम भणियइ।

तरे दानरूपीहि तदउलेइ खग्गो, जरे जेणि सतहत्तरउणिहि भग्गउ ॥२॥

भरे तिणि दिणि माइ छंडे वि बाला तरे तिणि दिणिअन्न दुत्थीय काला।

तरे तिणि दिणि रखयउ लोक भगउ, जरे ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरे जावड बाहड धनं वस्तुपाला, तरे जगड पेथड साहु तेजपाला ।
तरे समर बप्पन्न पर्त्तक्ष पेषउ, भयं जय किमइ भीमकउ दान देखउ ॥३॥

तरे तिणि दिणि माइ छंडे वि बाला तरे तिणि दिणि अन्नदुत्थईय काला ।
तरे तिणि दिणि रखयउ लोक भगउ, भायों ॥४॥

भीम भलउ भुजबलिहि, भीम भावठियउ भंजइ ।
भीम विमलकुलि तिलउ, भीम रायांह मन रंजइ ॥
भीम दयालु खरउ, भीम मुख मीठड बुलइ ।
भीम धरम उधरइ, भीम धरमह धुरि तुलइ ॥
अणहिलपुर भीम पसंसियइ, भीम भीम सहु को कहइ ।
कवि कहइ विल्ह केसव० ॥ भीम जगीतहि जस लहइ ॥५॥

इति भीमछंद ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाचकश्रीसिद्धिचन्द्रगणिकृत

न्यायसिद्धान्तमञ्जरी - टिप्पनक

-सं. मुनि कल्याणकीर्तिविजय

भूमिका

जानकीनाथ शर्मा विरचित नव्यन्यायना एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ न्यायसिद्धान्त-मंजरी पर महोपाध्याय श्रीभानुचंद्रगणिना शिष्य महोपाध्याय श्रीसिद्धिचंद्रगणिए पदकृत्यो सहित टिप्पनकनी रचना करी छे। अने ते अप्रसिद्ध छे। तेनी, कर्ताए स्वहस्ते लखेली प्रत भावनगरनी आत्मानंद जैन सभामांथी (नं. ८८६) उपलब्ध छे। तेनी फोटोकॉपी परथी संपादन करी आ टिप्पनक अत्रे रजू करवामां आवे छे।

आमां आपेल मूळग्रंथना पाठो, न्यायसिद्धान्तमंजरीना श्रीसत्गुरु पब्लिकेशन्स, दिल्ही; अंतर्गत श्रीगरीबदास ऑरिएन्टल सिरीझमां ई.स. १९९०मां पुनः प्रकाशित अने श्रीगौरीनाथ शास्त्री द्वारा संपादित ग्रंथ साथे सरखाव्या छे अने तेना पृष्ठ क्रमांको टिप्पणीमां आपेल छे। ★ आवां चिह्न करीने जे टिप्पणीओ आपी छे, ते मूळ प्रतिमां कर्ताए ज स्वयं लखेली छे।

आ टिप्पनकमां एक स्थाने, शिवादित्य विरचित **सप्तपदार्थी** ग्रंथ परनी महोपाध्याय श्रीसिद्धिचन्द्रगणि (आ टिप्पनकना कर्ता) विरचित **चंद्रचंद्रिका** नामक टीकामांथी, **चित्ररूप** माटे एक संदर्भ-नोंध आपेली छे। (ते शाने माटे आपेली छे ते समजायुं नथी। विद्वानो तेना पर प्रकाश करवा कृपा करे।)

आ टीका पण अद्यावधि अप्रकाशित छे अने तेनी एक मात्र प्रति विमलगच्छना भंडार, अमदावादमां (नं. ४८, बंडल नं. ३६) छे, एवुं सिंघी जैन ग्रंथमालाना (ग्रंथांक-१५, वि.सं. १९९७ / ई.स.१९४१) श्री सिद्धिचंद्रगणिकृत भानुचंद्रचरित नामक ग्रंथनी अंग्रेजी प्रस्तावनामां List of Works by Siddhichandra, ए शीर्षक हेठळ No. 7 तरीके श्री मोहनलाल दलीचंद देशाईए नोंधेलुं छे। ते सिवाय जैन परंपरानो इतिहास-भाग ३ (पृ. ७९८)मां पण आ टीकानी नोंध आपेल छे।

प्रस्तुत प्रतिनो परिचयः न्यायसिद्धान्तमंजरी परना टिप्पनकनी आ **प्रत** पंचपाठी छे। परंतु मात्र २ पत्रो पर ज पंचपाठ लखेल छे। कुल पत्रो ५ छे। **लेखन** संवत् १७०६ आसो सुद १०, शुक्रवार छे। अने प्रतिनुं लेखन, टिप्पनकना कर्ता **महो.** श्रीसिद्धिचन्द्रगणिए पोतेज वडग्राममां करेलुं छे तेवुं प्रतिना अंते आपेल पुष्पिका **द्वारा** जणाय छे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीसिद्धिचन्द्रगणिकृतं
न्यायसिद्धान्तमञ्जरी-टिप्पनकम्

श्रीसर्वज्ञं नमस्कृत्य सिद्धिचन्द्रेण धीमता ।
न्यायसिद्धान्तमञ्जर्याः पदकृत्यानि लिख्यते(न्ते) ॥१॥

ननु[1] किमिदं [2]याथार्थ्यं ? – **तद्वति तदवगाहित्वं याथार्थ्यम् । भवति हि रजते इदं रजतमिति ज्ञानं रजतत्ववति तदवगाहीति याथार्थ्यम् । [3]शुक्ताविदं रजतमिति ज्ञानं नाऽरजतत्ववति तदवगाहीति न याथार्थ्यम् ।**[4]

ननु एवं रजते इदं रजतं नवेति संशयोऽपि प्रमा स्यादिति चेत्[5]–

रजतत्वांशे प्रमैव । तद्वति तदनुभवस्तत्प्रमेति प्रामाणिकाः । एवं च रजतत्ववति रजतत्वप्रकारकानुभवो रजतत्वप्रमेत्यर्थः । घटत्ववद्विशेष्यकत्वे सति घटत्वप्रकारकत्वं प्रामाण्यमित्यर्थः ।

[6]अनुभवत्वं च स्मृतिभिन्नज्ञानत्वम् । तथा च स्मृतित्वानधिकरणं ज्ञानं अनुभवस्तेन स्मृत्यन्तरे न व्यभिचारः ।

[7]व्यापारवदसाधारणकारणत्वं करणत्वमिति । कारणत्वं करणत्वमित्युक्ते कुठारदारुसंयोगेऽतिव्याप्तिः, तद्वारणाय व्यापारवदिति । कुठारदारुसंयोगस्य छिदां प्रति कारणत्वेऽपि तस्यैव व्यापाररूपतया व्यापारवत्त्वाभावात् । व्यापार-वत्कारणत्वं करणत्वमित्युक्ते ईश्वरज्ञानेऽतिव्याप्तिः । यावत्कार्यत्वावच्छिन्न पति उपादानप्रत्यक्षत्वेनाऽहेतुत्वात् । अस्मदादिव्यापारेणैवेश्वरज्ञानस्य व्यापारव-त्त्वात् । तद्व्यावृत्तयेऽसाधारणेति । ईश्वरज्ञानस्य यावत्कार्यत्वावच्छिन्नं प्रति हेतुत्वेन साधारणत्वात् ।

ननु व्यापारवदसाधारणं तत्करणं, यच्च करणं तद्व्यापारवदिति लक्ष्य-लक्षणयोरभेदः । तद्व्यावृत्तये व्यापारवदसाधारणकारणत्ववत्करणम् । तथा च

---

१. मुद्रितग्रंथे पृ. १० । २. **किं वाऽनुभवत्वमित्यधिकं** मुद्रिते । ३-४. **यथार्थम्** मु. । ५. **चेन्न** मु. ॥ ६. मुद्रिते पृ. १२ । ७. मुद्रिते पृ. १३ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करणं लक्ष्यं, व्यापारवदसाधारणक(का)रणत्वं लक्षणम्। तथाऽपि करणं इतरेभ्यो भिद्यते, व्यापारवदसाधारणकारणत्वात्। इत्थं च हेतु-साध्ययोरभेदः स्यात् तदर्थं इदं करणत्वेन व्यवहर्त्तव्यम्, व्यापारवदसाधारणकारणत्वात्। अत्र करणत्वेन व्यवहारः साध्यः, व्यापारवदसाधारणकारणत्वं हेतुः। तथा च हेतु-साध्ययोरभेदः। इति करणलक्षणपदकृत्यानि।

तत्र[८] साक्षात्काररूपप्रमाकरणं प्रत्यक्षम्। साक्षात्कारत्वं च साक्षात् करोमीत्यनुगतप्रतीतिसाक्षिको [९]जातिविशेषः। न चेयं प्रतीतिरिन्द्रिय-जन्यज्ञान[१०]विषया, ज्ञानमात्रस्य मनोरूपेन्द्रियजन्यत्वात्, इन्द्रियाप्रतीतावपि तथा प्रतीतेश्च। नाऽपि चाक्षुषत्वादिजातिविषया, अननुगतत्वात्। यद्वा जन्यधीजन्यमात्रवृत्तिजातिशून्यज्ञानत्वं सा[११]क्षात्कारत्वमिति। अस्याऽर्थः - धीः ईश्वरधीः, तज्जन्या धीः साक्षात्कारधीः, तन्मात्रवृत्तिजातिः साक्षात्कारत्वं, तद्वान् साक्षात्कारः। तत्र साक्षात्कारत्वशून्यत्वे सति ज्ञानत्वाभावादव्याप्तिः अनुमितावतिव्याप्तिश्च, तत्र साक्षात्कारशून्यत्वे सति ज्ञानत्वस्य सत्त्वात्। तद्वारणार्थं प्रथमजन्यपदम्, ईश्वरज्ञानस्य जनयत्वाभावात्। जन्यधीः साक्षात्कारधीः, तन्मात्रवृत्तिजातिः साक्षात्कारत्वं; तच्छून्यत्वे सति साक्षात्कारे ज्ञानत्वं नास्तीति साक्षात्कारेऽव्याप्तिः, अनुमित्यादावतिव्याप्तिश्च। अनुमितौ जन्यधीः साक्षात्कारधीस्तन्मात्रवृत्तिजातिः साक्षात्कारत्वं; तच्छून्यत्वे सति ज्ञानत्वस्य सत्त्वात्। तद्वारणार्थं द्वितीयजन्यपदम्। जन्यधीर्व्याप्तिधीः, तज्जन्याधीरनु-मितिधीः, तद्वृत्तिजातिः अनुभवत्वं; तच्छून्यत्वे सति साक्षात्कारे ज्ञानत्वाभावाद-व्याप्तिस्तद्वारणाय मात्रपदम्। जन्यधीर्निर्विकल्पकधीस्तज्जन्याधीः सविकल्पक-धीस्तन्मात्रवृत्तिधर्मः सविकल्पकत्वं; तच्छून्यत्वे सति साक्षात्कारे ज्ञानत्वा-भावादव्याप्तिः। तद्वारणाय जातिपदम्।

सविकल्पकत्वं च न जातिः, चाक्षुषत्वादिना साङ्कर्यात्। चाक्षुषत्वाभाव-समानाधिकरणत्वं त्वाचसविकल्पके, सविकल्पकत्वाभावसमानाधिकरणत्वं

---

८. मुद्रिते पृ. १४। ९. **जातिविशेष एव** मु.। १०. **ज्ञानत्व०** मु.। ११. **०ज्ञानत्वं तत्** मु.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्विकल्पकचाक्षुषे; तदुभयं सविकल्पके चाक्षुषे । परस्परात्यन्ताभावसमानाधिकरणयोर्धर्मयोरेकत्व(त्र) समावेशः सङ्करः ।

जन्यधीर्व्याप्तिधीः, तज्जन्या धीरनुमितिः, तन्मात्रवृत्तिजातिर्घटत्वं; तच्छून्यत्वे सति ज्ञानत्वस्याऽनुमितावपि सत्त्वादतिव्याप्तिस्तद्व्यावृत्तये शून्यपदम् । जन्यधीजन्यमात्रवृत्तिजातिरनुमितित्वादिकं, तच्छून्यस्य परमाण्वादावतिव्याप्तेः चरमज्ञानपदम् । जन्यः कुलालः, तज्जन्यो घटः, तन्मात्रवृत्तिजातिर्घटत्वं; तच्छून्यत्वे सति ज्ञानत्वस्याऽनुमितावपि सत्त्वादतिव्याप्तिस्तद्व्यावृत्तये धीपदमिति दिक् ।

जन्यधीर्व्याप्तिधीः(१) सादृश्यधीः(२) पदधीः(३), एतज्जन्या धीरनुमितिधीः(१) उपमितिधीः(२) शब्दधीः(३); तन्मात्रवृत्तिजातिः अनुमितित्वं(१) उपमितित्वं(२) शब्दत्वं च(३) । तच्छून्यत्वे सति ज्ञानत्वं साक्षात्कारमात्रे–साक्षात्कारत्वावच्छिन्नसाक्षात्कारे वर्तते । साक्षात्कारान्यावृत्तित्वे सति साक्षात्कारवृत्तित्वं साक्षात्कारत्वं इति फलितोऽर्थः ।

ननु श्रुतिवाक्यजन्यं ज्ञानं श्रवणं (१) इतरभेदानुमितिमननं (२) मुहुर्मुहुरनुचिन्तनं निद(दि)ध्यासनं, तथा च जन्या धीः श्रवणधीर्मननधीर्निद(दि)ध्यासनधीस्तज्जन्या धीः साक्षात्कारधीस्तन्मात्रवृत्तिजातिः साक्षात्कारत्वं, तत्र तच्छून्यत्वे सति ज्ञानत्वाभावात्तत्त्वसाक्षात्कारे व्यभिचार इत्यत आह–**मानसेति । मानसावृत्तित्वेन जातेर्विशेषणीयत्वात्, मानसत्वं च जातिविशेषः इत्यास्तां विस्तरः ।**

निर्विकल्पकमतीन्द्रियमिति । अतीन्द्रियत्वं च साक्षात्कारनियामकप्रत्यासत्त्यनाश्रयत्वम् । साक्षात्कारत्वनियामिका या प्रत्यासत्तिस्तदनाश्रयत्वमित्यर्थः ।

यत्र घटत्वविशिष्टो घटस्तत्सम्बन्धश्चेत्युभयं भासते, केवलं घटो भासते तादृशं ज्ञानं साक्षात्कारः; अयं घट इति ज्ञाने घटत्वतत्सम्बन्धादेर्भासमानत्वात् त व्यभिचारः स्यादित्यत आह – **अयमिति** । निःप्रकारकमित्यर्थः ।

---

१२. मुद्रिते पृ. १८ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतीन्द्रियं चेत्तर्हि तत्सद्भावे किं प्रमाणमित्यत आह-तथाऽपीति।[13]

[14] **महदुद्भूतरूपस्पर्शवद्द्रव्यं त्वचो योग्यमिति।** रूपवद्द्रव्यं त्वच योग्यमित्युक्ते परमाणौ व्यभिचारस्तद्व्यावृत्तये महदिति। महद्द्रव्यस्फा(स्पा) र्शनमित्युक्ते वायौ व्यभिचारस्तद्वारणार्थं रूपवदिति। महद्रूपवद्द्रव्यं स्पार्शनमित्यु प्रभायां व्यभिचारस्तद्व्यावृत्तये महदुद्भूतरूपस्पर्शवदिति।

भवतु एक एक पटत्व-घटत्वयोः समवायः, परं समवायसिद्धिस्तु जात एवं चेत् अयं पट इति घटत्वप्रकारकं, अयं घटः इति पटत्वप्रकारकं ज्ञानं स्यात तेनाऽऽधाराधेयाख्यः स्वरूपसम्बन्ध एवाऽस्तु न समवाय इति भावः।

अन्यथाख्यातिपञ्चकमिति प्राञ्चः। अन्यथाख्यातित्रिकमिति मणिकृत स्तथा हि- यद्वस्तुपुरस्कारेण यस्य पूर्वभावोऽवगम्यते तत्तेनाऽन्यथासिद्धम्। य दण्डपुरस्कारेण दण्डत्वस्य पूर्वभावोऽवगम्यते इति दण्डत्वं दण्डेनाऽन्य-थासिद्ध

अन्यत्र क्लृप्तपूर्ववर्त्तिन एव कार्यसम्भवे तत्सहभूतत्वं अन्यथासिद्ध त्वम्। यथाऽन्यत्र क्लृप्तपूर्ववर्त्तिनो गन्धप्रागभावादेव गन्धोत्पत्तौ तत्सहचरि रूपप्रागभावो गन्धेनाऽन्यथासिद्धः।

एकं प्रति पूर्वभावे गृहीते एव परं प्रति पूर्वभावो गृह्यते तत्तेनाऽन्यथ सिद्धः। यथाऽऽकाशस्य शब्दं प्रति पूर्वभावे गृहीते एव अपरं घटादिकं प्र पूर्वभावो गृह्यते, तत्तेनाऽन्यथासिद्धः। इत्यन्यथाख्यातित्रिकमिति स्थितम्॥

विशिष्टानुभवे[15] हि विशेषणज्ञानं कारणं न तु स्मरणेऽपि, विशेषण ज्ञानं विनाऽपि स्मरणोपपत्तेः। अन्यथाऽनवस्था स्यात्। कथमनवस्था भवती चेत् - शृणु - अनुभवात्मकविशिष्टज्ञानं प्रति स्मरणात्मकविशिष्टज्ञा विशेषणज्ञानत्वेन कारणम्, विशिष्टज्ञानमात्रस्य विशेषणज्ञानजन्यत्वात् अनुभवात्म-कविशिष्टज्ञानजनकीभूतस्मरणात्मकविशिष्टज्ञानं प्रत्यपि विशेषण

---

१३. मुद्रिते पृ. २०। १४. मुद्रिते पृ. ३७। **महदुद्भूतस्पर्शवद्द्रव्यत्वेनैव त्वचो योग्यता** इति मु.। १५. मुद्रिते पृ. २२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानत्वेन हेतुत्वे वाच्ये तद्विशेषणज्ञानमपि विशिष्टज्ञानम् । तथा च तत्राऽपि विशेषणज्ञानं कारणम् । तदपि विशिष्टज्ञानम् । तत्राऽपि विशेषणज्ञानं कारणं, एवमनवस्था स्यात् ।

[१६] **ननु संयोगो न प्रत्यासत्तिरित्यत्र** द्रव्यग्रहत्वावच्छिन्नं प्रति संयोगत्वेन कारणता । तथा च द्रव्यग्रहत्वेन संयोगत्वेन कार्यकारणभावः इति सिद्धम् ।

ननु चक्षुः संयुक्तघटादिसमेवतग्रहे क्लृप्तः संयुक्तसमवायः । तेनैव चक्षुःसंयुक्तकपालादिसमवेतघटादिग्रहसम्भवे संयोगस्य प्रत्यासत्त्यन्तरकल्पने गौरवमिति चेत् । न । द्रव्यमात्रस्य संयुक्तसमवायेन ग्रहासम्भवात्, आत्मनो निरवयवत्वेनाऽसमवेतत्वात्, संयोगेनैव मनसाऽऽत्मग्रहात् ।

आत्मनि दुःखाभाव इत्यत्राऽधिकरणस्याऽभावत्वे आत्मन एवाऽभावापत्तिः । अभावस्याऽधिकरणात्मकत्वे दृढं दूषणं दत्तम् । किञ्चाऽधिकरणा-त्मा अभावस्तदा कपाले घटो भविष्यतीति प्रतीत्याऽस्ति कपाले पूर्वं घट प्रागभावस्तस्य कपालाधिकरणत्वेन स चेत् कपालात्मा तदा कपालस्य सर्वदा सत्त्वाद् घटे विनष्टेऽपि कपाले घटप्रागभावोऽस्तीति प्रतीत्यापत्तिः ।

अथाऽभावस्याऽधिकरणाद्भिन्नत्वे नैयायिकस्य दूषणं दत्ते – यदेतदिति । घटाभावो नाऽस्तीति प्रतीत्या घटाभावाभावोऽप्यधिकः स्याद्, सत्वधिकः इति चेत्, तदा घटाभावाभावो नास्तीति प्रतीत्या तदभावोऽप्यधिकः स्यात् । तत्राऽपि घटाभावे घटो नाऽस्तीति प्रतीत्या तदप्यभावोऽधिकः स्यादेवमनवस्थाभिया घटभावाभावः केवलमधिकरणमेवाऽऽगतम् । तथा चाऽधिकरणमेव सर्वत्राऽभावोऽस्तु, पूर्वोक्तं दूषणमपि भवतामेवाऽऽगतम् । तत्राऽऽहुः घटाभावाभावे घटो नाऽस्तीति प्रतीतेस्तदभावस्तु घटाभाव एव, घटाभावाभावस्तु घटाभाव एव । तथा च नाऽनवस्थेति प्राञ्चः ।

तैजसमिन्द्रियं चक्षुरिति [१९] । तैजसं चक्षुरित्युक्ते दीपसुवर्णादौ

---

१६. मुद्रिते पृ. ४४ । १७. मुद्रिते पृ. ५३ । १८. मुद्रिते पृ. ५३ । १९. मुद्रिते पृ. ६४ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यभिचारस्तद्वारणाय इन्द्रियमिति । इन्द्रियं चक्षुरित्युक्ते घ्राणादावतिव्याप्तिस्त - द्वारणाय तैजसमिति । यद्वा [१९] **रूपग्राहकमहदिन्द्रियं चक्षुरिति** लक्षणान्तरं रूपग्राहकमिन्द्रियं चक्षुरित्युक्ते मनसि व्यभिचारः, मनसः सर्वग्राहकत्वात्। तद्वारणाय महदिति। मनसोऽणुत्वान्न व्यभिचार इति भावः। महदिन्द्रियं चक्षुरित्युक्ते घ्राणादौ व्यभिचारस्तस्याऽपि महदन्द्रियत्वात्। तद्वारणाय रूपग्राहकमिति, घ्राणं तु गन्धग्राहकं न रूपग्राहकमिति भावः। रूपग्राहकं चक्षुरित्युक्ते आत्मनि व्यभिचारः, आत्मनः सर्वज्ञानजनकत्वात्। तद्वारणाय इन्द्रियमिति। एवं सर्वेष्वपि इन्द्रियलक्षणेषु अतिव्याप्त्यादिदोषाः स्वयमेव परिच्छेद्याः।

तथा च [२०] **स्पर्शग्राहकं महदिन्द्रियं वा त्वक्। आप्यमिन्द्रियं रसग्राहकं महदिन्द्रियं वा रसनम्। पार्थिवमिन्द्रियं गन्धग्राहकं महदिन्द्रियं वा घ्राणम्। कर्णशष्कुल्यवच्छिन्नं नभः श्रोत्रम्** [२१]। **महत्पदं** [२२] **सर्वत्र मनोवारणाय। निःस्पर्शमणु मन इति।** अणु मनः इत्युक्ते पार्थिवपरमाण्वादौ व्यभिचारस्तस्याऽप्यणुत्वात्। तद्वारणाय अणु इति।

[२३] **संयोगत्वावच्छेदेन द्रव्यजन्यत्वावधारणादिति।** संयोगत्वावच्छेदेन द्रव्यजन्यत्वेन कार्यकारणभावात्। यो यः संयोगः स द्रव्यजन्यो भवतीत्यर्थः।

[२४] **वायावुद्भूतग्रहानापत्तेरिति।** वायुः उद्भूतरूपवान्न इत्यत्राऽन्योन्याभावग्रहे अनुपलब्धिः कारणं तस्य लक्षणं योग्येऽधिकरणे इति गर्भितम्। तत्र वायोर्योग्याधिकरणत्वाभावेन व्यभिचरितं सत् न वायावुद्भूतरूपवदन्योन्याभावं गृह्णातीत्यर्थः।

[२५] **अनुमितिकरणं अनुमानम्। अनुमितित्वं च अनुमिनोमीत्यनुभवसिद्धो जातिविशेषः। यद्वा जन्यज्ञानजन्यत्वाव्यभिचारि जन्यशब्दधी-**

---

१९. मुद्रिते पृ. ६४। २०. **वायवीयमिन्द्रियं स्पर्शग्राहकं** मु.। मुद्रिते पृ. ६४। २१. **शब्दग्राहकं महदिन्द्रियं वा.** - इत्यधिकं मु.। २२. **सर्वत्र** इत्यधिकमत्र मुद्रितापेक्षया। २३. मुद्रिते पृ. ६६। २४. मुद्रिते पृ. ६१। **वायावुद्भूतरूपवद्भेदग्रहानापत्तेः** इति मु.। २५. मुद्रिते पृ. ६८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्यत्वव्यभिचारि जातिमदनुभवत्वं अनुमितित्वमिति लक्षणान्तरम् ।

जन्यशब्दधीजन्यत्व(त्वा)व्यभिचारि जातिमदनुभवत्वं इति चेत् - प्रत्यक्षत्वजातिमादाय व्यभिचारः । तथा हि - जन्या चाऽसौ शब्दधीश्च जन्यशब्दधीः। उपमितिः शाब्दधीश्च उभे अपि जन्यं यत् पदज्ञानं तज्जन्ये अतिदेशवाक्यार्थज्ञानं शब्दविषयकत्वाच्छब्दज्ञानं भवति उपमितिश्च तज्जन्या भवति। अथ च शब्दज्ञानमपि पदज्ञानजन्यं भवति, तज्जन्यत्वं उपमितौ शाब्दे च । तदसमा-नाधिकरणा या जातिः साक्षात्कारत्वरूपा तद्वान् यः अनुभवः साक्षात्कारः स अनुमितिरिति स्यात् ; तद्वारणाय जन्यज्ञानजन्यत्वाव्यभिचारीति। जन्यज्ञानं व्याप्तिज्ञानं, तज्जन्यत्वं अनुमितौ। अनुमितिनिष्ठो धर्मस्तत्समानाधिकरणा या जातिः प्रत्यक्षं च जन्यशब्दधीजन्यं न भवति ।

ननु वाक्यप्रत्यक्षादौ जन्यशब्दधीजन्यत्वाव्यभिचारित्वात् प्रत्यक्षत्वं न जन्यशब्दधीजन्यत्वव्यभिचारीति चेन्न । प्रत्यक्षत्वसामानाधिकरण्येन जन्यशब्द-धीजन्यत्वसत्त्वेऽपि प्रत्यक्षत्वावच्छेदेन जन्यशब्दधीजन्यत्वव्यभिचारित्वादति-व्याप्तिरिति सूचयितुं **नित्ये**[२६] **निर्विकल्पके** चेति ।

धर्मवदनुभवत्वं अनुमितित्वं इत्युक्ते सविकल्पकत्वमादाय प्रत्यक्षत्वेऽति-व्याप्तिः । सविकल्पकं जन्यज्ञानजन्यं भवति, सविकल्पकस्य निर्विकल्पक-जन्यत्वात् । अथ च जन्यशब्दधीजन्यं न भवति । तद्वारणाय जातिपदम् । सविकल्पकत्वं च न जातिः, चाक्षुषत्वादिना साङ्कर्यात् । चाक्षुषत्वाभावोऽस्ति त्वाचसविकल्पके, तत्र सविकल्पकत्वाभावो नाऽस्ति। सविकल्पकत्वा-भावोऽस्ति निर्विकल्पके, तत्र चाक्षुषत्वाभावो नाऽस्ति । तदुभयं च चाक्षुषे सविकल्पके । इति दिक् ।

★ प्रथम; पर्वते धूमदर्शनं (१), ततः सहचारस्मरणं (२), ततो धूमो वह्निव्याप्य इति व्याप्तिज्ञानं (३), ततो वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इति परामर्शलक्षणो व्यापारः (४), ततः पर्वतो वह्निमानित्यनुमितिः ।

२६. मुद्रिते पृ. ७० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का पुनरत्यन्ताभावे योग्यतेति । ग्रहणयोग्योऽत्यन्ताभावः कः इत्यर्थः । **योग्यमात्रप्रतियोगिके योग्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वमिति ।** योग्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिता यस्य स योग्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकः । अभावो ग्रहणयोग्यः इत्युक्ते भूतले घट-पिशाचौ न स्तः इत्यभावग्रहापत्तेः । योग्यधर्मो घटत्वं तदवच्छिन्नो घटः, तत्प्रतियोगिताकत्वात् । तद्वारणार्थं योग्यमात्रप्रतियोगिक इति । पिशाचस्य प्रतियोगिनः अयोग्यत्वान्न योग्यमात्रप्रतियोगिताक इत्यर्थः । योग्यमात्रप्रतियोगिको ग्रहणयोग्यः इत्युक्ते गुरुत्ववान् घटो नाऽस्तीत्यभाव-ग्रहापत्तेः, गुरुत्वविशिष्टघटरूपप्रतियोगिनो योग्यत्वात् । तद्वारणार्थं योग्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक इति । अयं योग्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताको न भवति गुरुत्वस्याऽतीन्द्रियत्वात् ।

बहिरिन्द्रियजन्यलौकिकद्रव्यप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति आलोकसंयोगावच्छेदेन चक्षुःसंयोगः कारणम् । बहिरिन्द्रियजन्यलौकिकद्रव्यसाक्षात्कारत्वेन आलोकसंयोगावच्छिन्नचक्षुःसंयोगत्वेन कार्यकारणभावः इति प्राञ्चः । तन्न । क्वचिच्चक्षुःसंयोगस्य पूर्ववृत्तितया तदभावात्, आलोकसंयोगावच्छिन्नचक्षुः-संयोगाभावादित्यर्थः । तत्र हि चक्षुःसंयोगावच्छिन्नलोकसंयोगस्य सत्त्वात् द्रव्यचाक्षुषं न स्यात् ।

---

२७. मुद्रिते पृ. ६२ ।

★ (प्रतिना पत्र क्रमांक २/१ ना हांसियामां टिप्पणी आपेली छे। मूलग्रंथमां तथा टिप्पनकमां तेनो संबंध कोनी साथे छे ते स्पष्ट थतुं नथी –

"न च चित्ररूपे मानाभावः, चित्रावयवि[नि] चाक्षुषत्वानुपपत्त्या तदङ्गीकारात्। रूपादीनां व्याप्यवृत्तितानियमेन यावद्रूपाणामेकत्राऽवृत्तिः । न च महत्त्वे सत्युद्भूत-रूपवत्समवेतत्वमेव चाक्षुषत्वप्रयोजकमिति वाच्यम्, यत्र चित्ररूपावयवारब्ध एवाऽवयवी तत्र रूपवत्समवेतत्वाभावात् । न च तत्राऽपि रूपवत्परम्पराश्रितत्वम-स्तीति वाच्यम् , परम्पर(रा)या अननुगमात् रूपवत्समवेतत्वापेक्षया रूपवत्त्वस्य लघुत्वाच्च । इति **चन्द्रचन्द्रिकायां** उपाध्याय**श्रीसिद्धिचन्द्रगणि**कृतायां **सप्तपदार्थी**टीकायाम् ।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ननु आलोकसंयोग-चक्षुःसंयोगयोःसमानकालीनत्वस्थले विनिगमना-विरहात् द्रव्यप्रत्यक्षत्वेन आलोकसंयोगावच्छिन्नचक्षुःसंयोगत्वेन चक्षुः-संयोगावच्छिन्नालोकसंयोगत्वेन चेति कार्यकारणभावद्वयावश्यकत्वात् यत्र चक्षुः-संयोगः पूर्वं जातः तत्र द्रव्यप्रत्यक्षत्वेन आलोकसंयोगावच्छिन्नचक्षुःसंयोगत्वेन कार्यकारणभावेऽप्यक्षतिरिति चेन्न । आलोकसंयोगावच्छिन्नचक्षुःसंयोगत्वेन चक्षुःसंयोगावच्छिन्नलोकसंयोगत्वेन च कारणत्वे आलोकसंयोगे चक्षुःसंयोगः, चक्षुःसंयोगे आलोकसंयोगः इति प्रतीत्यापत्तेः । यथा शाखावच्छेदेन कपिसंयोग अत्र शाखायां कपिसंयोग इति । तस्माद् बहिरिन्द्रियजन्यलौकिकप्रत्यक्षत्वेन आलोकसंयोगावच्छेदकावयवावच्छिन्नचक्षुःसंयोगत्वेन कार्यकारणभाव इति नव्याः । इत्थं च आलोकसंयोगस्य अधिकरणावच्छेदका ये अवयवास्तदधि-करणकः चक्षुःसंयोग इति प्रतीतिरपि निराबाधा ।

विनिगमनाविरहात् आलोकसंयोगावच्छेदकावयवावच्छिन्नचक्षुःसंयोगत्वेन चक्षुःसंयोगावच्छेदकावयवावच्छिन्नालोकसंयोगत्वेनेति कार्यकरणभावद्वयं तु तदावश्यकमेवेति । तन्न । कादाचित्कालोकसंयोगस्याऽवच्छेदकत्वमादाय तमःकालीनचक्षुःसंयोगात् द्रव्यप्रत्यक्षापत्तिः, आलोकसंयोगावच्छेद-कावयवावच्छेदेन चक्षुःसंयोगस्य सत्त्वात् ।

चक्षुःसंयोगकालीनालोकसंयोगावच्छेदकावयवावच्छिन्नचक्षुःसंयोगत्वेन आलोकसंयोगकालीनचक्षुःसंयोगावच्छेदकावयवावच्छिन्नआलोकसंयोगत्वेन च कारणत्वे तु गौरवम् । तस्मात् आलोकसंयोगावच्छेदकावच्छेद्यत्वसम्बन्धेन आलोकसंयोगविशिष्टचक्षुःसंयोगत्वेन कारणता इति नव्यतराः । तन्न, विनिगम-नाविरहात् *आलोकसंयोगावच्छेदकावच्छेद्यत्वसम्बन्धेन आलोकसंयोगविशि-चक्षुःसंयोगत्वेन चक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छेद्यत्वसम्बन्धेन चक्षुःसंयोगविशि-आलोकसंयोगत्वेनेति कार्यकारणभावद्वयमावश्यकम् । अवच्छेदकगौरवमधिक-मिति ।

---

* आलोकसंयोगावच्छेदका ये अवयवा, भित्त्याद्यवयवा इत्यर्थः, तन्निरूपितं अवच्छे-द्यत्वं च चक्षुःसंयोगे वर्त्तते । अनेन सम्बन्धेन आलोकसंयोगविशिष्टश्चक्षुःसंयोगः कारणं, तेन तमःकालीनचक्षुःसंयोगान्न घटप्रत्यक्षत्वम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किञ्च यस्य पटस्याऽर्धं तमसि अर्धं चाऽऽलोके तत्र तमोऽवच्छेदे चक्षुःसंयोगात् पटप्रत्यक्षतापत्तिः, ★स्वावच्छेदकावच्छेद्यत्वसम्बन्धेन आलोकसंयोगविशिष्टचक्षुःसंयोगस्य सत्त्वात्। न च तत्रांश एव पटनिष्ठालोकसंयोगस्याऽवच्छेदकाः प्राक् अंरववच्छेदेन तन्तावालोकसंयोगे तदसम्भवात्। अवच्छेदकता सम्बन्धेन संयोगत्वावच्छिन्नं प्रति अवच्छेदकतासम्बन्धेन संयोगस्य प्रतिबन्धकत्वात्। तस्माद् द्रव्यप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति विजातीयचक्षुःसंयोगः आलोकसंयोग हेतुरिति सङ्क्षेपः ।

अत्र सामान्यतो गृहीतगवयपदप्रवृत्तिनिमित्तस्य विशेषजिज्ञासया कीदृ गवय इति प्रश्ने गोसदृशो गवय इत्युत्तरवाक्यात् गोसदृशो गवयपदप्रवृत्तिनिमित्तवानित्याकारातिदेशवाक्यार्थशाब्दधीः । प्रश्नोत्तरस्थगवयपदयोर्विशिष्य ऽगृहीतशक्तिकयोर्गवयपदप्रवृत्तिनिमित्तवल्लाक्षणिकत्वात् सा करणम्। त साहृश्यविशिष्टपिण्डदर्शनं तत्सहकारि। ततोऽतिदेशवाक्यार्थस्मृतिः। सा व्यापा तत उपमितिरित्येके । साहृश्यविशिष्टपिण्डदर्शनमेवोद्बोधकीभूत स्वजन्यातिदेशवाक्यार्थस्मृतिव्यापारकं करणमित्यन्ये । परे तु अतिदेशवाक्यर्थस्मृतेरव्यवहितोत्तरमेव साहृश्यविशिष्टपिण्डदर्शने पुनस्तत्स्मृत्यपेक्षाभावात् तस् कथं व्यापारता ? न चाऽतिदेशवाक्यार्थशाब्दाद्यनुभव एव तत्स्मृतिद्वारा करणमित् मतं युक्तं, साहृश्यविशिष्टपिण्डदर्शनवतः अतिदेशवाक्यार्थशाब्द-बोधोत्तरं क्वचिदुपमितिसम्भवात् । तस्मात् ज्ञानत्वेनोपमितिकरणत्वं ज्ञानमा व्यापारोऽतिदेशवाक्यार्थज्ञानं साहृश्यविशिष्टपिण्डदर्शनं चेत्याहुः ।

हेतुज्ञानं अनुमानं, वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतः इति व्यापारः, प वह्निमानित्यनुमितिः ।

ननु पर्वतो वह्निमानिति नाऽनुमितेराकारः, किन्तु वह्निव्याप्यधूमवान् प वह्निमानित्याकारा; अन्यथा पर्वतो वह्निमानित्यनुमितित्वावच्छिन्नं प्र वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इति परामर्षत्वेन कारणत्वं न स्यात्, वह्निमानित्यनुमि

★ आलोक ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ह्निव्याप्यालोकवानिति परामर्षादपि सम्भवात् व्यतिरेकव्यभिचारः । न च लिङ्गकानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति धूमपरामर्षत्वेन हेतुत्वं, तथा च आलोक-मर्षजन्यानुमितिस्तु न धूमलिङ्गका येन व्यभिचारः स्यादिति वाच्यम् । धूमलिङ्गकत्वं च धूमज्ञानज्ञाप्यत्वं तथा च यत्र धूमः पक्षतावच्छेदकत्वेन भातस्तत्र धूमवान् पर्वतो वह्निव्याप्यालोकवानिति परामर्षजायां पर्वतो वह्निमानित्याका-कायामनुमितौ व्यभिचारः इति चेन्न । पर्वतो वह्निमानित्यनुमितित्वावच्छिन्नं प्रति स्वाव्यवहितपूर्वकालवृत्तिधूमपरामर्षस्य व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानत्वेन कारणता। अस्ति च आलोकपरामर्षजन्यानुमितावपि व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्म-ताज्ञानजन्यत्वं आलोकस्याऽपि धूमवद्वह्निव्याप्यत्वात् पक्षधर्मत्वाच्चेति ★सङ्क्षेपः।

[२८]**जन्यपदज्ञा[२९]नजन्यत्वव्यभिचार्यनुभवत्वाव्यापकजातिशून्यत्वे सति पदविषयकत्वाव्यभिचारिजातिशून्यधीत्वं शाब्दत्वम् ।** जन्यं यत् पदज्ञानं तज्जन्यत्वस्य व्यभिचारिणी जन्यपदज्ञानजन्यत्वासमानाधिकरणेत्यर्थः । एतादृशी अनुभवत्वस्याऽव्यापिका या जातिः प्रत्यक्षत्वानुमितित्वादितच्छून्यत्वे सति या पदविषयकत्वाव्यभिचारिणी जातिः उपमितित्वम्। तच्छून्यत्वे सति धीत्वं शाब्दत्वम् । प्रत्यक्षत्वादीनां अनुभवत्वाव्यापकत्वं तु यत्र यत्र अनुभवत्वं तत्र तत्र प्रत्यक्षत्वादीनामसत्त्वात् ।

पदविषयकत्वाव्यभिचारिजातिशून्यत्वे सति धीत्वं शाब्दत्वमित्युक्ते प्रत्य-क्षादावतिव्याप्तिः; पदविषयकत्वाव्यभिचारिणीजातिः उपमितित्वं, तच्छून्यत्वे सति धीत्वस्य प्रत्यक्षादौ सत्त्वात् । तद्वारणाय जन्यपदज्ञानजन्यत्वव्यभिचार्य-नुभवत्वाव्यापकजातिशून्यत्वे सति प्रत्यक्षादौ पदविषयकत्वाव्यभिचारिजातिः उपमितित्वं, तच्छून्यत्वे सति धीत्वस्य सत्त्वेऽपि जन्यपदज्ञानजन्यत्वव्यभिचा-रिणी या अनुभवत्वाव्यापिका जातिः प्रत्यक्षत्वादि तच्छून्यत्वाभावात् जन्यपद-ज्ञानजन्यत्वव्यभिचारिजातिमत्त्वे सति पदविषयकत्वाव्यभिचारिजातिशून्यत्वे सति धीत्वमित्युक्ते प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिः, प्रत्यक्षादौ जन्यपदज्ञानजन्यत्वव्यभिचारिजा-

★ इदं अनुमानलक्षण एव लेख्यम्। २८. मुद्रिते पृ. १५०। २९. ०**धीजन्यत्व**० मु.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिस्तस्याः सत्त्वात्। पदविषयकत्वाव्यभिचारिजातिः उपमितित्वं तच्छून्यत्वस्य सत्त्वाच्च। तद्वारणाय प्रथमं जातिशून्यत्वमिति पदम्। अनुभवत्वाव्यापकजातिशून्यत्वे सति पदविषयकत्वाव्यभिचारिजातिशून्यत्वे सति धीत्वमित्युक्तेऽसम्भवः, शाब्दे ज्ञाने पदविषयकत्वाव्यभिचारिजातिः उपमितित्वं तच्छून्यत्वस्य सत्त्वेऽपि अनुभवत्वाव्यापिका जातिः शाब्दत्वं तच्छून्यत्वस्याऽसत्त्वात्। तद्वारणाय जन्यपदज्ञानजन्यत्वव्यभिचारित्वं अनुभवत्वाव्यापकजातेर्विशेषणं तथा च जन्यपदज्ञानजन्यत्वव्यभिचारिणी या अनुभवत्वाव्यापिका जातिः प्रत्यक्षत्वादि तच्छून्यत्वस्य शाब्दे सत्त्वात्। नाऽसम्भवः, जन्यपदज्ञानजन्यत्वव्यभिचारिजातिशून्यत्वे सति पदविषयकत्वाव्यभिचारिजातिशून्यधीत्वमित्युक्ते असम्भव एव। शाब्दज्ञाने पदविषयकत्वाव्यभिचारिणी जातिः उपमितित्वं, तच्छून्यस्य सत्त्वेऽपि जन्यपदज्ञानजन्यत्वव्यभिचारिणी जातिः अनुभवत्वं तच्छून्यत्वस्याऽसत्त्वात्। तद्वारणाय अनुभवत्वाव्यापकत्वं जातिविशेषणम्। तथा च जन्यपदज्ञानजन्यत्वव्यभिचारिणी अनुभवत्वस्याऽव्यापिका या जातिः प्रत्यक्षत्वादि तच्छून्यत्वस्य शाब्दे सत्त्वान्नाऽसम्भवः।

पदधीजन्यत्वव्यभिचारिअनुभवत्वाव्यापकजातिशून्यत्वे सति पदविषयकत्वाव्यभिचारिजातिशून्यधीत्वमित्युक्तेऽनुमितावतिव्याप्तिः। पदधीः ईश्वरधीः, तज्जन्यत्वव्यभिचारिणी नित्यनिष्ठा जातिस्तच्छून्यत्वस्य पदविषयकत्वाव्यभिचारिणी जातिः उपमितित्वं तच्छून्यत्वस्य च अनुमितौ सत्त्वात्। तद्वारणाय प्राथमिकं जन्यपदम्। तथा च जन्यपदधीजन्यत्वव्यभिचारिणी अनुभवत्वाव्यापिका जातिः अनुमितित्वादि तच्छून्यत्वस्याऽनुमितौ सत्त्वान्नाऽतिव्याप्तिः। जन्यपदज्ञानजन्यत्वव्यभिचारिअनुभवत्वाव्यापकजातिशून्यत्वे सति धीत्वमित्युक्ते उपमितावतिव्याप्तिः। तद्वारणाय पदविषयकत्वाव्यभिचारिजातिशून्यत्वे सतीति। तथा चौपमितौ जन्यपदज्ञानजन्यत्वव्यभिचारिअनुभवत्वाव्यापक-जातिः प्रत्यक्षत्वादि तच्छून्यत्वस्य सत्त्वेऽपि पदविषयकत्वाव्यभिचारिजातिः उपमितित्वं, तच्छून्यत्वस्याऽसत्त्वात् नाऽतिव्याप्तिः। जातावतिव्याप्तिवारणाय धीपदम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्यश्रये न लक्षणा। धवखदिरौ छिन्धीत्यत्र धवखदिरमात्रप्रतीत्या क्लृप्तशक्त्यैवोपपत्तेः धवपदस्य धवे शक्तिः खदिरपदस्य खदिरे शक्तिस्तथा च द्वाभ्यां शक्तिभ्यामेव धवखदिराविति स्वरूपद्वयप्रतीतेः न साहित्याश्रये लक्षणेति भावः। नीलोत्पलमित्यत्र नीलाभिन्नमुत्पलमित्यर्थः। तथा चोत्पलपदस्य नीलाभेदविशिष्टोत्पले लक्षणेति केचित्। तन्न। अभेदस्य संसर्गविधयैव भानात्।

[३०]**प्रथमायामिति**। घटपदोत्तरप्रथमायाः षष्ठ्यर्थे वा लक्षणा। तथा च 'न घटः पट' इत्यत्र घटसम्बन्धवदभाववान् पटः। इत्थं च घटसम्बन्धरूपः षष्ठ्यर्थः अभावोपरि प्रकारतया भासत इति।

विभक्त्यर्थप्रकारको नामाऽर्थविशेष्यकः शाब्दबोधः, स च भेदेनैवोपपन्नः। कथमिति ? भारतस्य श्रवणमित्यत्र भारतकर्मकं श्रवणमित्यर्थः। स च विना लक्षणामनुपपन्नः।

[३१]**तथे**ति। घटो नाऽस्तीत्यत्राऽपि प्रथमायाः षष्ठ्यर्थलक्षणा। तथा च घटो नाऽस्तीत्यत्र घटसम्बन्ध्यभावोऽस्तीत्यर्थः।

[३२]**एकस्या**मिति। एकाया बहुत्ववैशिष्ट्याद् बहुत्वस्यैकत्वे लक्षणा।

घटः पटो नेत्यत्र पटाभाववान् घट इति शाब्दबोधः। तथा च घटः पटाभावस्याऽऽश्रयः आश्रयी च घटाभावः। एवं च पटाभाव-घटयोः आश्रयाश्रयीभावः सम्बन्धः, ननु पटाभाव-घटयोः कथं अन्वयः ? नामार्थयोर्भेदेनाऽन्वयस्याऽव्युत्पत्तेः। ननु घटः पटो नेत्यत्र घटपदस्याऽर्थो घटः, पटपदस्याऽर्थो पटः, नञर्थश्चाऽभावः। नञुत्तरलुप्ता या षष्ठी तदर्थः सम्बन्धः। तदुपस्थितिश्च नञुत्तरलुप्तषष्ठीस्मरणात्। तथा च घटो नेत्यस्य घटाभावसम्बन्ध इत्यर्थः। वाक्यार्थस्तु घटाभावसम्बन्धवान् घटः। एवं च न नामार्थयोरन्वयः किन्तु विभक्त्यर्थनामार्थयोरिति। स च भेदेनाऽप्युपपन्न इति चेत्, न। [३३]**षष्ठीलोप-मजानतोऽपीति**।

---

३०. मुद्रिते पृ. २२९। **प्रथमाया** इति मु.। ३१. मुद्रिते पृ. २३४। ३२. मुद्रिते पृ. २२९।
३३. मुद्रिते पृ. २३१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ननु नञ्पदस्याऽभाववति लक्षणया अभाववान् अर्थः । तथा च **पटो** नेत्यस्य पटाभाववानित्यर्थः । वाक्यार्थस्तु पटाभाववान् घट इति । पटाभाववदभिन्नो घट इति यावत् । तथा च नामार्थयोरभेदेनैवाऽन्वय इति चेत्, न । **घटस्ये**ति । यद्यपि अभेदसम्बन्धेन पटाभाववति घटे अन्वयस्तथाऽपि पटे अभावस्याऽन्वयो न स्यात्, अभावस्यैकदेशत्वात्। यथा चैत्रस्य पितेत्यत्र पितृत्वस्य जनकपुंस्त्वार्थकत्वात् चैत्रपदस्य जनकत्वेऽन्वयः, न तु जनक-पुंस्त्वे । तथा च चैत्रस्य पितेत्यस्य चैत्रस्य जनक इत्यर्थः ।

गौः शुक्लेत्यत्र शुक्लाभिन्ना गौः इति शाब्दबोधः शुक्लाभेदवती गौरिति यावत्। तथा च शुक्लाभेदान्वयो गवि जायते। तस्य शुक्लाभेदान्वयस्याऽशक्यत्वात् तद् ज्ञानं न स्यात् ।

[३५] **कार्यत्वान्विते पदानां शक्ति**रिति। कार्यतावाचकपदसमभिव्याहृतं वाक्यं कार्यत्वविशिष्टं बोधयति । तथा हि-यजेतेति वाक्यं कार्यतावाचकं पदं विधिस्तत्समभिव्याहृतमेव योगो मत्कार्य(र्यं) इति बोधजनकम् । तथा च कार्यत्वविशिष्टे यागे यजेतेति वाक्यस्य शक्तिः ।

शास्त्राच्चन्द्रादिमहत्त्वप्रतीत्युत्तरमपि चन्द्रादिस्वल्पतायाः शास्त्रान्महत्त्वप्रतीत्या कृत्वा बाधानापत्तेरिष्टापत्तिरित्यत आह - **चरमे**[३६]ति ।

कार्यत्वान्विते शक्तिकल्पने गौरवं आवश्यकत्वेन प्रामाणिकत्वान्याय्यमेवेत्यत आह - **किञ्च**[३७] ।

[३८] **असंसर्गाग्रहे**ति । यत्र कार्यतावाचकं पदं नाऽस्ति तत्र नाऽन्वयबोधः। घटादिपदात् घटबोधस्तु घटपदं घटश्चैतदुभयोर्वाच्यवाचकभावरूपो यः असंसर्गस्तस्याऽग्रहणात् ।

भेदसम्बन्धेन नामार्थप्रकारकशाब्दे विभक्तिजन्योपस्थितिः कारणम् ।

---

३४. मुद्रिते पृ. २३१ । ३५. मुद्रिते पृ. १८० । ३६. मुद्रिते पृ. १८४ । ३७. मुद्रिते पृ. १८५ । ३८. मुद्रिते पृ. १८२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था भूतले घट इत्यत्र भूतलाधारको घटः तथा च भूतलरूपो नामार्थः विभक्त्यर्थः, धारत्वं तदुपरि प्रकारतया भासते। तत्र विशेष्यतासम्बन्धेन विभक्त्यर्थः, आधारत्व दुपस्थितेः कारणत्वम्।

ननु औपगव इत्यत्र अण्प्रत्ययार्थः अपत्यत्वं, तदुपरि उपगुः प्रकारतया भासते। तत्र विशेष्यतासम्बन्धेन विभक्त्यर्थोपस्थितिः कारणं नाऽस्तीति व्यभिचार इति चेत्, न। भेदसम्बन्धेन नामार्थप्रकारकशाब्दबोधे विभक्तिप्रत्ययान्यतर-न्योपस्थितिः कारणम्। अस्ति च औपगव इत्यत्राऽपि उपगुः अपत्यत्वोपरि कारतया भासते। तत्र विशेष्यतासम्बन्धेन अपत्यत्वरूपप्रत्ययार्थोपस्थितिः कारणम् यद्वा भेदसम्बन्धेन नामार्थप्रकारकशाब्दबोधे प्रत्ययार्थोपस्थिति कारणं, विभक्तेरपि त्ययत्वात्। भूतले घट इत्यत्र औपगव इत्यत्र च प्रागुक्तरीत्या बोधः उपपन्नः।

नामार्थप्रकारकशाब्दबोधे प्रत्ययजन्योपस्थितित्वेन कारणत्वे नीलोत्पल-मित्यत्र नीलपदार्थः उत्पलोपरि प्रकारतया भासते, तत्र विशेष्यतासम्बन्धेन प्रत्य-यार्थोपस्थितित्वेन कारणत्वं नास्तीति व्यभिचारः। तद्वारणार्थं भेदसम्बन्धेनेति विशेषणम्। नीलोत्पलमित्यत्र नीलरूपो नामार्थः उत्पले अभेदसम्बन्धेनाऽन्वे-तीति नाऽतिव्याप्तिः। इदमपि निपातातिरिक्तनामार्थविशेष्यके बोध्यम्।

गज इव रौतीत्यत्र भेदसम्बन्धेन गजः इवार्थोपरि प्रकारतया भासते। तत्र विशेष्यतासम्बन्धेन प्रत्ययार्थोपस्थितिः कारणं नाऽस्तीति। तथा च भेदसम्बन्धेन निपातातिरिक्तविशेष्यकनामार्थप्रकारकश(शा)ब्दबोधत्वावच्छिन्नं प्रति विशेष्यतासम्बन्धेन प्रत्ययार्थोपस्थितित्वेन कारणता। अन्यथा भूतलं घट-इत्यत्र भूतल-घटयोरन्वयः स्यात्। भूतले घट इत्यत्र तु भूतलं आधारत्वरूप-प्रत्ययार्थे अन्वेति, आधारत्वं च घटे अन्वेति।

नामार्थ-धात्वर्थयोरपि साक्षात्राऽन्वयः किन्तु विभक्त्यर्थद्वारा। चैत्रेण

★ आकाशो भूतलवृत्तिः तन्निष्ठसंयोगप्रतियोगिकत्वात् घटवत् तथा सत्यनेनैव हेतुना भूतलस्याऽप्याकाशवृत्तित्वं स्यात् तेन आकाशो वृत्तिः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओदनः पच्यते इत्यत्र चैत्रकर्तृकपाकजन्यफलशाली ओदनः इति शाब्दबोधः । चैत्ररूपो नामार्थः कर्तृत्वरूपप्रत्ययार्थे अन्वेति । कर्तृत्वं धात्वर्थे पाके अन्वेति। तथा च कर्तृत्वरूपविभक्त्यर्थद्वारा चैत्ररूपो नामार्थः धात्वर्थे पाकेऽन्वेति न तु साक्षात्। इत्थं च निरूपितत्वसम्बन्धेन चैत्रीयकर्तृत्वविशिष्टपाकजन्यफ-लशाली ओदनः इति शाब्दबोधः । जनकतासम्बन्धेन चैत्रविशिष्टपाकजन्यफ-लशाली ओदन इति शाब्दबोधे तु चैत्रः ओदनः पच्यते इति प्रयोगापत्तेः । जनकतासम्बन्धेन पाके चैत्रवैशिष्ट्यं तु तदुपस्थापकपदाभावेऽपि संसर्गतयेति न दोषः ।

घटमित्यत्र घटवत्कर्मत्वमित्यन्वयबोधः । अत्र घट इति पदं अम्-पदसमभिव्याहृतमेव घटवत्कर्मत्वमित्यन्वयबोधजनकम् । अतो घटपदस्य घटवत्कर्मत्वमित्यन्वयबोधे अम्पदसमभिव्याहारः आकाङ्क्षा। अत्र आधारता-सम्बन्धेन कर्मत्वं घटे, आधेयतासम्बन्धेन घटः कर्मत्वे । घटमानयेत्यत्र घटवत्कर्मत्ववदानयनविशिष्टाकृतिरित्यर्थः । आनयेत्यत्राऽऽनयनविशिष्टाकृति-रित्यर्थः । तथा च नीञ्पदं हिसमभिव्याहृतमेव आनयनविशिष्टाकृतिरित्यन्व-यबोधजनकम्। अतो नीञ्पदस्य ही(हि)पदसमभिव्याहारः आनयविशिष्टा-कृतिरिति बोधे आकाङ्क्षा। गामानयेत्यत्र गोकर्मकानयनविशिष्टाकृतिः। दण्डेन गामानयेत्यत्र दण्डकर्तृकगोकर्मकानयनविशिष्टाकृतिरित्यर्थः ।

विशिष्टज्ञानत्वावच्छिन्नं प्रति असंसर्गाग्रहत्वेन कारणत्वे भूतले घट इति लौकिक ज्ञानं न स्यात्, भूतलेऽनुमित्यात्मकघटासंसर्गग्रहस्य सत्त्वात्। तद्वारणार्थं लौकिकसाक्षात्कारातिरिक्तत्वं विशेषणम् । लौकिकसाक्षात्कारतिरिक्तविशिष्ट-ज्ञानत्वावच्छिन्नं प्रति असंसर्गाग्रहत्वेन कारणत्वे शङ्खे अलौकिकः पीतत्वभ्रमो न स्यात्, शङ्खे पीतत्वासंसर्गग्रहस्य सत्त्वात्। तद्वारणाय पित्तादिदोषजन्यत्वं विशेषणम्। तथा च लौकिकसाक्षात्कारातिरिक्तपित्तादिदोषाजन्यविशिष्टज्ञान-त्वेन असंसर्गाग्रहत्वेन कार्यकारणभावः । वस्तुतस्तु शङ्खे पीतत्वभ्रमस्याऽपि लौकिकत्वादलौकिकत्वेन विशेषणादेव न व्यभिचार इति पित्तादिदोषाजन्यत्वं विशेषणं चिन्त्यम् ।

★ चैत्रविशिष्टो यः पाकस्तज्जन्यं यत्फलं तच्छाली ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशुतरेति । क्रमिकाणां मेलकाभावादिति चेत्, न । क्रमोत्पन्नानां घटपदादीनां मेलकस्य सत्त्वात् । तद्वारणार्थं आशुतरविनाशिनामिति[40][41] । घटपदादयस्तु नाऽऽशुतरविनाशिन इति आशुतरविनाशिनां मेलकाभावादिति चेत्, न । सहोच्चारितानां शब्दानां मेलकस्य सत्त्वात् । तद्वारणार्थं **क्रमिकाणा**मिति ।

चिकीर्षात्वेन कृतिसाध्यत्वज्ञानत्वेन कारणतेति कृतिसाध्यत्वज्ञानं चिकीर्षात्वावच्छिन्नं प्रति विशेषसामग्री, चिकीर्षां प्रति सामान्यसामग्री च । बलवदनिष्टाननुबन्धित्वज्ञानं इष्टसाधनत्वज्ञानं च । मण्डलीकरणादौ च चिकीर्षोत्पादककृतिसाध्यताज्ञानत्वरूपविशेषसामग्रीसत्त्वेऽपि निरुक्तसामान्यसामग्री-विरहान्न चिकीर्षोत्पादककृतिसाध्यताज्ञानत्वरूपविशेषसामग्रीसत्त्वेऽपि निरुक्त-सामान्यसामग्रीविरहान्न चिकीर्षा । नन्वेवं चिकीर्षां प्रति कार्यकारणभावत्रयं, चिकीर्षायाश्च प्रवृत्तौ कारणत्वं, तथा च गौरवं लाघवं वा सममेवेत्यत आह - चिकीर्षात्वावच्छिन्नं प्रति कृतिसाध्यत्वज्ञानत्वेन कारणत्वं मण्डलीकरणादौ च कृतिसाध्यत्वरूपचिकीर्षाजनककारणसत्त्वेऽपि बलवदनिष्टसाधनत्वज्ञानस्य प्रतिबन्धकस्य सत्त्वान्न प्रवृत्तिः ।

इष्टसाधनत्वं न विधिपदशक्यं, यागे साधनत्वस्यैवाऽसत्त्वात् । यागे साधनत्वासम्भवः कथमिति चेत् - आशुतरविनाशित्वेनेति ।

विधिपदशक्यमपूर्वमेव । तथा चाऽपूर्वे यागस्य विषयतासम्बन्धेनाऽन्वयः, यागीयापूर्वे यागनिरूपितविषयतायाः सत्त्वात् ।

ग्रामं गच्छतीत्यत्र ग्रामकर्मकगमनानुकूलव्यापारवानित्यर्थः । अत्र कर्मत्वं च क्रियाजन्यफलशालित्वम् । अत्र क्रियामात्रं धात्वर्थः, फलं द्वितीयार्थः ।

जन्याश्रयत्वे संसर्गौ इति । **न्यायभास्कर**स्तु-फलविशिष्टा क्रिया धात्वर्थः, आश्रयत्वं द्वितीयार्थः, जन्यत्वं संसर्गः । तथा च संयोगविशिष्टा क्रिया गमेरर्थः, विभागविशिष्टा क्रिया त्यजेरर्थः । क्रियायां संयोगवैशिष्ट्यं तु जनकतासम्बन्धेन । तथा च त्यजि-गम्योर्न पर्यायत्वम् । क्रियामात्रस्य शक्यत्वे तु त्यजिगम्योः

३९-४०. मुद्रिते पृ. २८८ । ४१. **आशुविनाशिनां** इति मु. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्यायत्वं दुर्वारमिति व्यक्तमाकरे। त्यजिगम्योः पर्यायत्वे इष्टापत्तौ तु गच्छतीत्यत्र त्यजतीत्यापत्तेः। तद्वारणाय गच्छतीत्यादिसमभिव्याहारविशिष्टद्वितीयात्वेन संयोगबोधत्वेन कार्यकारणभावकल्पने तु गौरवम्। तस्मात् फलविशिष्टैव क्रिया धात्वर्थः। अत्र विनिगमनाविरहात् क्रियाविशिष्टं फलं धात्वर्थः इत्यपि भवति तथाऽप्यत्र फलविशिष्टैव क्रिया धात्वर्थः। तथा च गच्छतीत्यत्र धात्वर्थतावच्छेदकं फलं संयोगः, त्यजतीत्यत्र विभाग इति।

तस्या आख्यातार्थेति। आख्यातपदोपस्थाप्यसङ्ख्यायाः आख्यात-विशेष्येऽन्वयनियमः। आख्यातार्थविशेष्यत्वं च विभक्त्यर्थाविशेषणीभूतनामार्थत्वम्। चैत्रः ओदनं पचतीत्यत्र ओदनरूपो नामार्थः कर्मत्वरूपविभक्त्यर्थे विशेषणीभूतः। अविशेषणीभूतो-नामार्थश्चैत्रः आख्यातार्थविशेष्यः।

ननु ओदनस्याऽन्वयः कर्मत्वे, कर्मत्वान्वयः पाके, पाकस्याऽनुकूलता-सम्बन्धेन कृतौ कृतेश्च चैत्रेऽन्वयस्तथा च पाकविशेषणत्वेन भासमानं कर्मत्वं तदेव कथं नाऽऽख्यातार्थविशेष्यं ? विभक्त्यर्थोपरि अविशेषणीभूय भासमा-नत्वादिति चेत् , न। नामार्थपदेन तन्निरासात्। कर्मत्वं तु द्वितीयार्थो न तु नामार्थः। अत एव पाकोऽपि न आख्यातार्थविशेष्यः, तस्य धात्वर्थत्वेन नामार्थत्वाभावात्।

चैत्रेण ओदनः पच्यते इत्यत्र चैककर्तृकपाकजन्यफलशाली ओदनः इति शाब्दबोधः। अत्र ओदनः आख्यातार्थविशेष्यः, तस्य मुख्यविशेष्यत्वेन भानात्। न तु कर्ता आख्यातार्थविशेष्यः, तस्य कर्तृत्वरूपविभक्त्यर्थोपरि विशेषणीभूय भासमानत्वात्। तथा च विभक्त्यर्थाविशेषणीभूतो नामार्थः ओदनः। आख्यातार्थविशेष्यः-पचतीत्यत्र चैत्रः आख्यातार्थविशेष्यः तत्र सङ्ख्यान्वयः।

चिन्तामणिकृन्मते तु यत्र रूपाख्यातार्थस्य चैत्रेणाऽनन्वये चैत्रस्या-ऽऽख्यातार्थविशेष्यत्वाभावादाख्यातपदोपस्थाप्यसङ्ख्यान्वयो न स्यात् इति।

स्थीयते इत्यत्राऽनुकूलतासम्बन्धेन कृतिविशिष्टा स्थितिरिति शाब्द-बोधः। तथा चाऽनुकूलतासम्बन्धेन कृतिर्धात्वर्थोपरि प्रकारतया भासते इति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

र्थविशेष्यकोऽत्राऽन्वयबोधः । अत्राऽऽख्यातार्थविशेष्यत्वाभावात् नानन्वयः ।

[४२] **स्वप्रकाशे**ति । स्वप्रकाशज्ञानवादिनो–नाऽयं घट इत्याकारो ज्ञानस्य घटमहं जानामीत्याकारकम् । तथा च ज्ञानं यथा स्वात्मानं विषयीकरोति स्वगतं प्रामाण्यमपि विषयीकरोतीत्यर्थः । ज्ञानं स्वविषये घटादौ घटादीनां कर्मत्वान्यथानुपपत्त्या ज्ञातताख्यं फलं जनयति तथा च ज्ञाततया ज्ञानमनु– म् । अनुमानं च – अयं ज्ञानविषयो ज्ञाततावत्त्वादिति । इत्थं चाऽनुमित्या ज्ञानं विषयीक्रियते तथा ज्ञानगतं प्रामाण्यमपि, यथा वह्न्यनुमित्या वह्निनिष्ठो । तथा च ज्ञानग्राहकमनुमानं तदेव प्रामाण्यस्येत्यर्थः । अयं घट इत्या- कस्योत्पन्नज्ञानस्याऽप्रत्यक्षत्वात्तदनुमेयत्वमिति ।

गुञ्जायां वह्निरिति ज्ञानं गुञ्जाविशेष्यकं वह्नित्वप्रकारकम् । वह्नौ गुञ्जा ज्ञानं वह्निविशेष्यकं गुञ्जात्वप्रकारकं, अस्ति च वह्नि–गुञ्जयोर्गुञ्जा–वह्निरिति वह्नित्ववद्विशेष्यकत्वं वह्नित्वप्रकारकत्वम्, वह्नौ गुञ्जेति भ्रमे वह्नित्ववद्विशे- कत्वस्य भासमानत्वात् गुञ्जायां वह्निरिति भ्रमे वह्नित्वप्रकारकत्वस्य भासमान- त्व । तद्वद्विशेष्यत्वावच्छेदेन तत्प्रकारकत्वपक्षे तु नाऽतिव्याप्तिः, तद्वद्विशेष्य- त्वावच्छेदेन तत्प्रकारकत्वानवभासात् । वह्नि–गुञ्जयोर्गुञ्जा–वह्निरिति भ्रमे त्ववद्विशेष्यकत्वं वह्नौ गुञ्जा इत्यत्र भासते, वह्नित्वप्रकारकत्वं गुञ्जायां वह्निरित्यत्र भासते ; न तु तद्विशेष्यकत्वावच्छेदेनेत्युक्तम् ।

॥ इति पादशाहश्री**अकबरजल्लालदीन**सूर्यसहस्रनामाध्यापक–श्रीशत्रु- ञ्जयतीर्थकरमोचनाद्यनेकसुकृतविधापकमहोपाध्यायश्री**भानुचन्द्रगणि**शिष्या- ष्टोत्तरशतावधानसाधनप्रमुदितपादशाहश्री**अकब्बर**प्रदत्त**खुसफहमा**परा- भिधानमहोपाध्यायश्री**सिद्धिचन्द्रगणि**विरचितं **न्यायसिद्धान्तमञ्जरी**टिप्पनकं सम्पूर्णं समाप्तिमगात् । संवत् १७०६ वर्षे आश्विनशुदि १० शुक्रे । महोपा- ध्यायश्रीसिद्धिचन्द्रगणिभिर्लिखितं श्रीवडग्रामे ॥

---

४२. मुद्रिते पृ. ३४४ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'चंदप्पहचरियं'नी रूपकथा

रूपककथाना बीज प्राचीन भारतीय साहित्यमां उपनिषदो, बौद्ध साहि अने जैन साहित्यमां उपलब्ध थाय छे. सिद्धर्षि कृत[1] उपमिति भव प्रपंचा (र. स ९६२) अे जैन साहित्यनी रूपककथा परंपरामां प्राप्त थती प्रथम स्वतंत्र कृति छे उत्तरवर्ती साहित्यमां आनुं अनुसरण संस्कृत, प्राकृत अने अपभ्रंश भाषाम कथानाटक अने कव्यना स्वर रूपे थतुं रह्युं छे.

प्राकृत साहित्यमां रूपककथा अवांतर कथा लेखे उपलब्ध थाय वर्धमानसूरि कृत जुगाइ जिणिंद चरियं कषाय कुटुंबनी कथा[2] देवसूरि कृ [3]पउमप्पहसामि चरियं अंतरंग कथा (संस्कृत भाषामां) अने [4]कुमारपाळ प्रतिबोध अपभ्रंश भाषामा मळे छे.

वडगच्छीय श्रीचन्द्रसूरिना शिष्य आचार्य हरिभद्रसूरिअे पृथ्वीपाल मंत्री अनुरोधथी चोवीस तीर्थंकरोना चरित्रनी रचना करी हती. तेमांथी अत्यारे मात्र च चरित्र काव्यो उपलब्ध छे. ते पैकीमांना अेक चंद्रपभचरित्र[5](प्रा.)मां उपदेश स्वरू रूपककथा उपलब्ध थाय छे. जेनुं जे अहीं संपादित करी छे.

२५३ गाथामां रचायेल आ रूपककथामां जैनदर्शनना तत्त्वज्ञान रूपकात्मक रीते रजू करवामां आव्युं छे. जीव केवी रीते शिवपुरीमां पहोंचीने मु पामी शके तेनुं निरुपण करायुं छे. प्रस्तूत कथामां रुपको परंपरा अनुसार छे. प धटनाबाहुल्य दृष्टिगोचर थतुं नथी. तेथी कथा रसप्रद बनती नथी. विगतोनुं प्राचु जोवा मळे छे.

आ लोकमां मध्यदेशमां भवचक्रवाल नामनुं नगर हतुं त्यां महाप्रतापी क परिणाम नामनो राजा हतो. तेनी अनादिभवसंतति अने अकामनिर्जरा नामनी राणीओ हती. अनादिभवसंततिने ज्ञानावरणीय आदि आठ पुत्रो हतां.

राजा प्रतिदिन पोताना आठ पुत्रोने सलाह आपता के हे पुत्रो तमे ब सुसमर्थ छो तो कंइक अेवी प्रवृत्ति करो के हंमेशा राज्यमां स्थिरता रहे. अने बी राज्योने जीतीने तेनी सतत रक्षा करता रहो तमारा बधानो दळनायक महामोह असंव्यवहार प्रमुख नगरीनो राजा बनशे. ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी वगेरे अेने ताबे ह नरकगति प्रमुख नगरीनो स्वामी आयुष्य बनशे. वेदनीय, नाम अने गोत्र तेना सह बनशे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोह नरेन्द्रनी मूढता नामानी प्रियाने बे पुत्रो हता अेक दर्शनमोह अने बीजो मो दर्शन हनी प्रियतमा मोहदृष्टिने त्रण पुत्रो हता. सम्यकदर्शन, मिश्र अने दर्शन चारित्रमोहनी अविरति नामनी पत्नीने चतुर्मुखवाळा त्रण पुत्रो वैश्वानर) शैलस्थंभ (दर्प, मान) अने सागर (लोभ) तेमज बहुलिका (माया) नामनी दना पुत्री हती.

अेक वार मोहराजाअे पोताना पुत्र दर्शन मोहने कह्युं के तारी पासे हनी मोटी शक्ति छे. तेथी असंव्यवहार नगरमांथी हु जे लोकोने मोकलुं तेने ष्टि मोहथी मोहित करी वश करवा तारो पुत्र मिथ्यादर्शन मारो सचिव छे. तारे पण मार्गदर्शन लेवुं परंतु तारो सम्यक् दर्शन नामनो पुत्र मने योग्य लागतो नथी. आपणां बधा नगरोने उज्जड करवा इच्छे छे. यतिपुरीमां आवेला विवेकगिरि र पर सुबोधराजा अने तेनी पत्नी सत्यदृष्टि रहे छे. अेनी साथे तारा पुत्रनी मैत्री टे आ कुपुत्रनो क्यारेय विश्वास करीश नही. चारित्रमोह नामनो तारो भाई समर्थ अने तेनो परिवार तारा कार्यमां सहायभुत बनशे.

वळी आयु राजानी चार प्रियाओ छे. पापमति, महामाया, मध्यम गुण यता अने शुभ प्रवृत्ति. तेमना चार पुत्रो अनुक्रमे नरकायु, र्यिगायु, मजुजायु अने यु नामना छे. आमांथी नरकायु मिथ्यादर्शन अमात्यने वशवर्ती छे. चारित्रमोहना जलनादि महासुभटोनी साथे आनो स्नेह संबंध बनशे. आम शिखामण आपीने नमोहने युवराज पदे स्थाप्यो आम तेओनुं कार्य सुपेरे चालतुं हतुं.

अेक वार पर्याप्त सन्निग्राममां पंचेन्द्रिय महोल्लानां केटलांक लोकोने यक्त्वे वशीकृत कर्या अने दर्शनमोहना देखतां ज बोधराजनी आज्ञाथी ते वेकसेन दुर्गमां यतिपुरमां लई जवाया. तेमांथी वळी केटलांक मिथ्यादर्शन मात्यनी चढवणीथी पाछा फर्या. सम्यक्दर्शनने वशवर्ती लोको देवगतिपुरीमां गया ांथी फरी मनुष्य पुरमां जइने यतिपुरीमां गया. त्यांथी सुबोध नरपति अने चारित्र नरपतिनी आज्ञाथी भृत्यपणुं छोडीने शिवनगरीमां गया. आम तेओअे मळीने हराजनी सेनाने निष्फळ बनावी.

आ वात जाणी दर्शनमोहे आयु राजा पासे आनी फरियाद करी तेमज वपुरीमां लई जवाता लोकोने रोकवा माटे विनंती करी. आ सांभळी आयुराजाअे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरकायुपाल वगेरेने बोलावी आज्ञा आपीके सम्यक्त्वना प्रवेशथी पोत पोता नगरोनी रक्षा करो त्यारे नरकायुपाल आदि अे जणाव्युं के सम्यक् दर्शन अम सेनाने तपथी बांधी नांखे छे.

आयुराजाअे प्रत्युत्तर आपतां कह्युं के हा आ बधी मने खबर छे. तो पण त नरकायुपाल, अशाता आदि महासुभटो साथे मळी नरकादि पृथ्वीमां जईने को लोभथी कोइकने भयथी अने कोईकने सन्मान आपी ते विपक्षीओपर विज जितिलो.

राजानो आदेश स्वीकारी सौ पोत पोतानी नगरीमां गया, अने अस नीचगोत्र अशुभ नाम प्रमुख सुभटोनी सहायथी रत्नप्रभा आदि नगरीमां त्यांना लोक आयु स्थितिनी मददथी नित्य हरावीने अत्यंत दुर्लंध्य हेडमां नांखवा लाग्यां.

अहीं सातेय नरकनी जघन्य अने उत्कृष्ट स्थितिनुं (१३८-१५९) ते तेमां प्रवेश अने निर्गमन माटेनी प्रतोलीओनुं वर्णन छे. आ ज रीते तिर्यंच, ते देवोनी जघन्य अने उत्कृष्ट स्थितिओनुं निरूपण करवामां आव्युं (१७५: २०३)

आमां मोहराजना सैन्यमां जे दुर्धर्ष सुभटो हतां सम्यक्दर्शन वगेरेअे ते लीलापूर्वक हरावीने सुबोध नरपतिना प्रदेशमां जइने चारित्रधर्मराजनी आज्ञा आराधना करीने लोकोने शिवनगरीमां लई जाय छे. शिवपुरीमां गयेला लोक मोहनराधिप के कर्मपरिणाम नराधिप प्रभावित करी शकतो नथी. तेमनां दुष्ट कर्मब रहेतां नथी के फरी संसार रहेतो नथी. शाश्वत अनंत सुखसागरमां तेमनी गति थाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'चंदप्पहचरियं'नी रूपककथा

अत्थि अ लोयब्भंतरभूयंमि इमंमि मज्झ-देसंमि ।
सासय-सयल निवेसं नयरं भवचक्कवालं ति ॥१॥
तत्थ य महापयावो नराहिवो वसइ कम्मपरिणामो ।
परिपंथेइ य सयलं जयत्तयं सवसमुवणेउं ॥२॥
तस्स उ अणाइभवसंतइ त्ति अभिहाण विस्सुया देवी ।
नाणावरणाई उण अट्ठ सुया तेसिं विक्खाया ॥३॥
बीया अकामनिज्जर नामा उ महानिवस्स से देवी ।
पिययमपसायठाणं चिट्ठेइ अखंड-माहप्पा ॥४॥
वियरइ य निवोणुदिणं अट्ठ वि नियसुयाण सिक्खमिणं ।
जह अंगरुहा तुब्भे सुसमत्था सव्वकज्जेसु ॥५॥
एयं च मज्झ रज्जं अच्चंतमहल्लमिय सया तुब्भे ।
तह कह वि पयट्टिज्जह जहा थिरीहोई आकालं ॥६॥
एयस्सं पुण थिरत्तं लोयथिरत्तेण हवइ ता लोगो ।
निज्जंतो रज्जंतरमवियप्पं रक्खियव्वो त्ति ॥७॥
तुम्हाण य सव्वेसिं मज्झे दलनायगो महामोहो ।
हवउ जओ एसो च्चिय बलिओ सव्वेसिं मज्झंमि ॥८॥

ाहि-

एत्थंतरमि वेयणिय नामगोया भणंति नणु तुब्भे ।
अणुयत्तह मोहं(मोहनि वं) अणुयत्तिस्सामो वयं आउं ॥९॥
मोहेवगए वि जओ जीवो सो आउयंमि जीवंते ।
खीणंमि तंमि पुण धुवमम्हे होमो निराहारा ॥१०॥
ता भणइ कम्मपरिणामनरवई अहह जुत्तमुल्लवह ।
किं पुण घरे विवायं दूरं दूरेण परिहरह ॥११॥
नाणावरणाईणं तिण्ह पहू हवउ ता महामोहो ।
वेयणिय-नामगोयाण सामिओ होउ पुण आऊ ॥१२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवचक्कवालनयरस्सिमस्स सामी अहं पि ता चिट्ठं ।
एय पुराणुगयं च्चिय-गिह पाडय-गामयाणेगो ॥१३॥
नरयगइ प्पमुहाणं नयरीणं हवउ सामिओ आऊ ।
वेयणिय-नामगोया य सहयरा होंतु एयस्स ॥१४॥
एसोउ महामोहा नाणावरणाइ कुमरकयसेवो ।
हवउ असंववहारप्पमुहेसु पुरेसु नरनाहो ॥१५॥
किं पुण स-घर-विरोहो दूरंदूरेण परिहरेयव्वो ।
कायव्वं सव्वेहिं वि सया वि साहेज्जमन्नोन्नं ॥१६॥
एयंमि बहुमयंमि उ सव्वेसिं वि तेसिं निवइणो ठविओ ।
जुवरायपए मोहो मंडलियत्ते पुणो आऊ ॥१७॥
अणुसासिया य कमसो दुवे वि जह मोहराय ताव तए ।
अस्संववहार-महापुरस्स चिंता विहेयव्वा ॥१८॥
चोद्दसभूययग्गामाणेगिंदिय-पमुह-पाडयाणं च ।
अन्नत्थ वि मह रज्जे चिंता सयला वि तुह चेव ॥१९॥
तुमए वि पुत्त आउय नरयगइप्पमुहपुरविसेसेसु ।
रयणप्पहाइयासु य तप्पडिबद्धासु नयरीसु ॥२०॥
नारयतिरियनरामरलोयाण ठिई जहा सया होइ ।
तह कायव्वं जम्हा तुह चेव पहुत्तणं तत्थ ॥२१॥
अन्नोन्नं च दुवेहि वि न चित्तभेओ कयावि कायव्वो ।
इय सिक्खविउं निय-निय- ठाणे ते पेसिया तेण ॥२२॥
परिवालेतिं य निय-निय-रज्जाइं गरुय-हरिसमावन्ना ।
तत्थ य मोह-नरिदँस्स पिया सा मूढया नामा ॥२३॥
तेसिं पुणो दोन्नि सुया दंसण-चारित्तमोह अभिहाणा ।
पढमस्स पिययमा दिद्ठिमोहणी नाम विक्खाया ॥२४॥
मिच्छदंसण संमत्तमीस नामा य तिन्नि तेसिं सुया ।
चारित्तमोह-दइया अविरइ नाम त्ति तेसिं तु ॥२५॥
वसानर-सेलत्थंभ-सागरा चउमुहा सुया तिन्नि ।
एका य कन्नया बहुलिय त्ति नामा चउव्वयणा ॥२६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह मोहनराहिवई दंसणमोहं पडुच्च वज्जरइ ।
जह वच्छ दिट्ठिमोहण सत्ती तुह चिट्ठए महई ॥२७॥
ता अस्संववहार-प्पमुह-पुरे पिंडिओ मए लोगो ।
इय दिद्ठिमोहणेणं मोहिय तह भे धरेयव्वो ॥२८॥
अह अन्नत्थ न वच्चइ नायण्णइ इयर-वयणमवि कहवि ।
इयर-मुहं अनियंतो चिट्ठइ य तुहेव वसवत्ती ॥२९॥
वच्छ मए तुह अ च्चिय पहुत्तमेयं समप्पियमसेसं ।
अपमायपरेणं सया वि भवियव्वमिह तुमए ॥३०॥
अन्नं च तुज्झ जेट्ठो चिट्ठइ जो मिच्छदंसणो पुत्तो ।
संसय-विवज्जयाइ य उवायजणणंमि सो कुसलो ॥३१॥
इय तुह रज्जे सचिवत्तणंमि संठाविओ मए एसो ।
तुह कज्जे जयइ सयंपि सो विसेसेण भणिओ उ ॥३२॥
जे वि पिउभाइणो तुह नाणावरणाइणो महासुहडा ।
ते वि हु गरुय गरुए सामंतपए मए ठविया ॥३३॥
एएसिमवि कुबोह - अबोहाइ भडा भमंति सव्वत्थ ।
अखलियपसरा जे ते वि तुह करेहिंति साहज्जं ॥३४॥
किं पुण तए वि मिच्छादंसणमापुच्छिऊण लोयाणं ।
आएसो दायव्वो न उ कत्थ वि नियय-इच्छाए ॥३५॥
सम्मद्दंसणनामो तुह पुत्तो उण न सुंदरो अम्ह ।
जमहिलसइ उव्वासिउमम्ह पुराइं असेसाइं ॥३६॥
निसुयं च मए नणु इह चिट्ठइ दुग्गे विवेय-गिरिसिहरे ।
जइणपुरंमि नरिंदो सुबोहनामो महाबाहू ॥३७॥
सद्दिट्ठी तस्स पिया तेहिं य सह संगओ सुओ तुज्झ ।
इय एयंमि कुपुत्ते वीसासो भे न कायव्वो ॥३८॥
एत्तो चेव पवेसो रक्खेयव्वो इमस्स जत्तेण ।
निय- नयरेसु असंववहारप्पमुहेसु तुमए त्ति ॥३९॥
एगिंदि-विगलपाडयमज्झं पविसेज्ज पुण जइ कहिं चि ।
तह वि चिरावत्थाणं इमस्स तुमए न दायव्वं ॥४०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो वि तुह मीसनामो तणूरुहो सो वि मिच्छसम्माण ।
अणुयत्ति कुव्वंतो पडिहाइ न मज्झ सुद्धप्पा ॥४१॥
मज्झत्थयाए जइ वि हु न दंसए एस किंचि वि वियारं ।
तह वि निय-पक्ख-पुट्ठिं न कुणइ जो तंमि का आसा ॥४२॥
किं पुण एसो उदयस्स थेवकालो त्ति तारिसं न भयं ।
तह वि हु इमस्स तुमए स-पुर-पवेसो न दायव्वो ॥४३॥
चारित्तमोहनामो सहोयरो जो उ वल्लहो तुज्झ ।
का वन्निज्जइ तस्स वि समत्थिमा पत्थुयत्थंमि ॥४४॥
जं से अविरइनामा पिया सुया तेसिं तिन्नि चउवयणा ।
जलण-गिरिथंभ-सागर नामाणो बहुलिया धूया ॥४५॥
एयाणि सहावेण वि अम्हं कुलवुड्ढिकारयाणि सया ।
निय पिउणा तुमए वि हु पुरक्खडाइं विसेसेण ॥४६॥
जं जलण-तविय-चित्तो न गणइ जणयं न मन्नए जणणिं ।
लंघइ सहोयरं गुरुयणं च अवगणइ निरवक्खो ॥४७॥
विरमेइ न पावाओ धम्मंमि मणं मणं पि न करेइ ।
अहव परायत्ताणं एत्तियमेत्तंमि किं चोज्जं ॥४८॥
गुरुथंभेणं थड्ढीकओ अप्पाणमेव मन्नंतो ।
तिणमिव गणेइ जयमवि कुणइ अवण्णं गुरूणं पि ॥४९॥
भणइ य अहमेव गुरू भुवणस्स वि न उण मह गुरू को वि ।
जाइकुलाईण वि गुण-रयणाण महं चिय निहाणं ॥५०॥
अच्चंतायासकरं दुरंत दुग्गय-निवाय-संजणयं ।
सागरओ सागरमिव दुप्पूरं जणइ जयआसं ॥५१॥
एएसिं पुणो भइणी बहुतरं कूडकवडमाईणि ।
सिक्खावेंती भुवणे गुरुत्तणं पयडइ जणस्स ॥५२॥
इय तीए वसवत्ती जीवो अन्नं धरेसि हिययंमि ।
भासइ पुण अन्नयरं अन्नतमं किंचि वि करेइ ॥५३॥
ता जणणि-जणय-बंधव-सामिप्पमुहं पि सयलमवि लोगं ।
निरवेक्खं वंचंतो कुगइ दुहाण वि न बीहे इ ॥५४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इय तुह अहिलसियत्थोवसाहगाइं इमाइं सयलाइं ।
मुणिऊणिमं सकज्जे तुमए वावारियव्वाइं ॥५५॥
किं च इमाणं नवहा हासाई सहयरा महासुहडा ।
तिव्वासत्तियरे वि हु लोय-वसीयरण-सत्तिजुया ॥५६॥
तिय इह मोह-वावरिएहि वावारिय च्चिय हवंति ।
इय सव्वे चिय एए गुरुसंमाणेण दट्ठव्वा ॥५७॥
जो उ महामंडलिओ आउयराओ कओऽम्ह जणएण ।
सो सच्चविउं असंववहारपुरे बहुजणं अम्ह ॥५८॥
निय-पुर-नयणिच्छाए बहुयरमाउट्ठिइं न वियरेइ ।
अंतमुहुत्ताओ उण संहारं कुणइ पुणरुत्तं ॥५९॥
जइ वि हु तह वि मए निय उदएणऽन्नत्थ निज्जमाणो सो ।
तत्थ वि धरिज्जए पुण पुणरवि कारविय उप्पत्तिं ॥६०॥
न य एवं कीरंते मए समुव्वहइ वइरभावं सो ।
केवलमणंतलोयं इच्छइ काउं सनयरीसु ॥६१॥
न य एत्तिएण अम्ह वि तस्सुवरि समत्थि कावि वइरमई ॥
जम्हा तन्नयरीसु वि आणाकारी जणो अम्ह ॥६२॥

अन्नं च -

पावमइ महामाया मज्झिमगुण-जोग्गया सुहपवत्ती ।
आउ-निवस्स पियाओ चउरो चत्तारि तासिं सुया ॥६३॥
नरयाऊ तिरियाऊ मणुयाउ सुराउणो त्ति जहसंखं ।
एए कया सपिउणो रायाणो नियय-नयरेसु ॥६४॥
एएसु य नरयाऊ मिच्छादंसणअमच्चवसवत्ती ।
कत्थ वि ढिइं न बंधइ तव्विरहे जमिह कइया वि ॥६५॥
जे वि हु जलणाइ महासुहडा चारित्तमोह-अंगरुहा ।
तेहिँ वि समं सिणेहो इमस्स इय भे सहाओ सो ॥६६॥
जो उण तिरियाउ महानराहिवो सो वि इह सहावेण ।
बहु मिच्छत्तणुजाई कया वि सासायणरुई वि ॥६७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुयाउ य देवाउ य रायाणो उण कया वि मिच्छस्स ।
कइया वि हु सम्मस्सिय दुण्हं पि कुणंति अणुयत्तिं ॥६८॥
जे वि हु आउनिवइणो नामाइ नराहिवा महासुहडा ।
तेसु वि सम्मद्दंसण कयाणुराया धुवं थोवा ॥६९॥
बहुया उ मिच्छदंसण सचिवं चिय मंतिऊण अणवरयं ।
कज्जेसु पयट्टंति ते वि तुह चेव आयत्ता ॥७०॥
ता कस्स वि आसंका न विहेयव्वा तए तणय अहवा ।
सुसहायवीरियाणं निवईण भवे कुओ संका ॥७१॥
एवं च सिक्खवेउं पिउणा सो जुवनिवत्तणे ठविउं ।
पेसविओ य महाबलकलिओ सनिउत्तवावारे ॥७२॥
अह अक्खलियप्पसरो सव्वत्थ वियंभिउं समाढत्तो ।
तह कह वि जह न आणं लंघइ सो को वि हु कहिं वि ॥७३॥
एवं च वियंभंतो तमसंववहारपुरजणमसेसं ।
तह कह वि दिट्ठिमोहेण मोहिउं कुणइ जह सहसा ॥७४॥
गयचेयणो व्व मुच्छागओ व्व अवहरियजीविओ व्व सया ।
न मुणइ सुहं न दुक्खं न फंदए न वि य संचलइ ॥७५॥
किं तु समजीयमरणो समेक्कदेहप्पवेस-निक्कासो ।
समनीसासूसासो समसमयाहारनीहारो ॥७६॥
चिट्ठइ सया वि अविहड-सिणेह-मविय-मइव्व अच्चंतं ।
इयरेसिमवियरंतो नियजाईए पवेसं पि ॥७७॥
तिरियगईनयरीए जइ वि पहू आउराइणा ठविउं ।
तिरियाऊसामंता तप्पडिबद्धं च नयरमिणं ॥७८॥
तह वि नियंतस्स वि से तिरियगईनयरिसंतिओ लोओ ।
निज्जइ को वि कया वि हु कत्तो वि विवक्खिचरडेहिं ॥७९॥
दंसणमोहेण असंववहारपुरंमि पुण तहा विहियं ।
जह न प्फुरइ कहंचि वि पडिवक्खिय नाममेत्तं पि ॥८०॥
जे वि हु आउ-निवइणो नामाइ-निवाणमवि सुहविवागा ।
सम्मद्दंसणमणुयत्तंति इमेसिं वि तहिं न गमो (?) ॥८१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छत्त-वयण-विसए असुहविवागा वसंति जे सुहडा ।
तेसिं पुणो सविसेस कओ पवेसो सनयरंमि ॥८२॥
जे वि हु चोद्दहभूयग्गामे एगिंदिपाडया के वि ।
पज्जत्तापज्जत्तग बायर-साहारण सरूवा ॥८३॥
ते वि असंववहारय - नयरसरिच्छा कया परं तत्तो ।
वच्चंति अन्नहिं पि हु अकाम-निज्जर-निओएण ॥८४॥
जे उण पत्तेयतणू अप्पज्जत्तयगिहेसु वट्टंति ।
ते वि हु दंसणमोहेण अप्पाणो च्चिय वसे नीया ॥८५॥
बेइंदिया य पाडयगया वि अपज्जतगिहगया जे उ ।
ते वि हु जावज्जीवं वट्टंति इमस्स आणाए ॥८६॥
जे उण पज्जत्तग-गिह-निवासिणो तेसिं केसु वि कया वि ।
सम्मत्तस्स वि होज्जा कित्तियमेत्तो वि हु पवेसो ॥८७॥
किं पुण अचिरठिई सो जम्हा एगिंदि पाडगाईहिं ।
निस्सारिज्जइ दसणमोहेण हढेण सहस त्ति ॥८८॥
पज्जत्त सन्निगामे पंचिंदिय-पाडयंमि जे उ जणा ।
तम्मज्झओ के वि हु सम्मत्तेणं वसीकाउं ॥८९॥
पेक्खंतस्स वि दंसणमोहस्स विवेगसेनदुग्गंमि ।
जइणपुरे निज्जंतेसु बोहरायस्स आणाए ॥९०॥
तत्तो वि पुण वि केइ मिच्छद्दंसण-अमच्च-बुद्धीए ।
वेलविया ठाणाइं पुव्विल्लाइं चिय उवेंती ॥९१॥
अवरे उ सुबोह-महीवइणा तत्थेव थिरयरा विहिया ।
धरिऊणं आणाए चरित्तधम्मस्स नरवइणो ॥९२॥
के वि हु सम्मद्दंसण-अमच्च-वसवत्तिणो पुणो तत्तो ।
देवगईए पुरीए वच्चंते किंचि वि पवित्ता ॥९३॥
सम्मत्तमंति-बहुमय-ठिईए वसिऊण तत्थ चिरकालं ।
माणुसपुरीए गंतुं वच्चंति पुणो वि जइणपुरे ॥९४॥
तत्तो सुबोहनरवइ-आणाए चरित्तधम्म-नरवइणो ।
भिच्चा निब्भिच्चीहविऊणं पावेंति सिवनयरिं ॥९५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सो उण मिलियस्स वि मोहराय-सेन्नस्स धुवमिह अजोग्गा ।
ता दंसणमोहो परिचिंतइ धिसि विसममावडियं ॥९६॥
जं मह पुत्तेण इमे पक्खित्ता सिवपुरीए नेऊण ।
न य तत्थम्ह पवेसो अवालणिज्जा तओ एए ॥९७॥
इय आणिउं असंववहाराउ पुराउ पाणिणो इयरे ।
सिवगय-जिय-ठाणाइं पिउणो आणाए पूरेमि ॥९८॥
जेण न मह चुल्लपिया रूसइ इय चिंतिरो य तह कुणइ ।
मुणिउं च वइयरमिमं आउयपालो वि चिंतेइ ॥९९॥
मह भाउ-सुओ सोहणमणुट्ठए जं इमाइं ठाणाइं ।
न धरइ सुन्नाइं जणे खलेहिं अन्नत्थ नीएवि ॥१००॥
एत्थतरंमि दंसणमोहो सिरिआउराय-पासंमि ।
आगंतूणं सविणयमुल्लवइ कयंजली एवं ॥१०१॥
सम्मत्तनामगो जो जाओ मह ताय-नंदणो एसो ।
अच्चंतँ पडिणीओ आणं पि न अम्ह मन्नेइ ॥१०२॥
अवगणइ पियामहमवि जम्हा अम्हाण सयलठाणाणि ।
उव्वासइ अणुकमसो मिलिउं पिसुणाणिमो दुट्ठो ॥१०३॥
तुम्हाण वि निरवेक्खो बलवंत-सुबोह-निवइ-आसत्तो ।
तणलवमिव अवगच्छइ अम्हे सव्वे वि सपरियणो ॥१०४॥
एवं च निययकुलधूमकेउणो पिसुण-संग-निहयस्स ।
तस्स कुपुत्तस्स वयं किं करिमो इय निवेएह ॥१०५॥
केवलमम्ह जणं सो हरिउं जं जेण ठाणमिह सुन्नं ।
तत्थ असंववहारपुराओ अन्नं निवेसेमो ॥१०६॥
तंमि य जणो अणंतो वसइ जओ तेण थोव-जणगहणे ।
सिरिमोहमहीवइणो न किंचि वि अवरज्झिमो अम्हे ॥१०७॥
हरियं पि जं तरेमो तमवस्सं वालिऊण रक्खेमो ।
अन्नं पि किं पि सीसइ पत्थाव-समागयं तुम्ह ॥१०८॥
नरयगइप्पमुहासु य पुरीसु जे निवइणो तए ठविया ।
नरयाउपाल-पमुहा पयंड-दंडा महासुहडा ॥१०९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते वि न नियनयरीसुँ पविसंतं तं तरंति वारेउँ ।
पेच्छंताण वि तेसिं तव्वासिजणं जणो कंचि ॥११०॥
करेइ सो नियआणं मणुगइ-नयरीए आणिउं कमसो ।
जइणपुरें पविसेउं सुबोहरन्नो वसीकुणइ ॥१११॥
सो वि समप्पिय चारित्तधम्मरायस्स सिवपुरिं नेइ ।
अह सो अवालणिज्जो हवइ जणो अम्ह सव्वेसिं ॥११२॥
इय तेसिं तहा सिक्खा दायव्वा सहयरा वि ते के वि ।
जह निय-विसयंमि वि सेवया-समत्तं पि हु न देंति ॥११३॥
तह जे तुम्हं कडए सुहडा साओदयाइणो के वि ।
संति सुहपयडिरूवा ते वि न वसवत्तिणो तुम्ह ॥११४॥
जं सम्मत्तस्सेवय ते वि पयट्टेंति गाढमणुयत्तिं ।
इय केरिसी जयासा विइन्नभेयंमि भे कडए ॥११५॥
नाणावरणाईण उ निवईण न नूण अत्थि वभिचारो ।
जं मिच्छत्तवसगया सव्वे ते सच्चविज्जंति ॥११६॥

तहाहि –

नाणंतरायदसगंय पदंसणवंग च मोहछव्वीसा ।
नामस्स चउत्तीसा नरयाउ असायनीया य ॥११७॥
एए बायासीय वि मिच्छत्तामच्चवसगया पायं ।
तुम्हम्ह पक्खमेव य पोसिंति सया वि एक्कमणा ॥११८॥
अहवा किं बहुएणं विवक्खिचरडेहिं नियजणमसेसं ।
निज्जंतं रक्खवह मह पयत्तेण पहु तुब्भे ॥११९॥
इय भाउ-तणय-वयणं अह निउणं निसुणिऊण सो निवई ।
नरयाउपालगाई सव्वे सद्दाविउं भणइ ॥१२०॥
जह नियनियनयरेसुं संमत्तपवेसरक्खणं कुणह ।
जं संमत्तपवेसे अम्ह जणो फिट्टिहइ सयलो ॥१२१॥
तयणु नणु देव अम्हे किं करिमो तेण अम्ह कडयाइं ।
विद्धाइं सयलाणि वि तवेणं बलोहभडाइं ॥१२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इय जंपिरेसु तेसुं पयंपए आउपाल नरनाहो ।
जह दंसणमोहेण वि सयलमिणं साहियमहेसि ॥१२३॥
इय जारिसया वाया दिज्जंते ओलया वि तारिसया ।
इय सयललोय-पयडं वयणं धरिऊण हियएसु ॥१२४॥
नरयाउपालय-प्पमुहाणमसायाइणो महासुहडा ।
जिणह विवक्खं मिलिउं गंतुं नरयाइ-पुहईसु ॥१२५॥
लोहेण केइ केइ वि भएण संमाणिउं पुणो के वि ।
तह कुणह जह न तुब्भे कुटुंबिणोऽन्नत्थ वच्चंति ॥१२६॥
अह तस्स निवइणो इममाएसं घेत्तु उत्तिमंगेणं ।
मिलिउं सव्वे वि हु ते निय-निय-नयरीसु वच्चँति ॥१२७॥
ते वि हु असायप्पमुहा सुहडा किल आउनिवइ-भाउसुया ।
वेयणियाइ-निवाणँ जेण इमे होंति अंगरुहा ॥१२८॥

तहाहि -

वेयणिय-निवस्स पिया अणुभूई तीए दोन्नि अंगरुहा ।
साय-असायऽभिहाणा परिणइ नामा उ नामपिया ॥१२९॥
तेसिं उ सुभासुभ सद्द-रूव-रस-गंध-फासया तणया ।
गोय-पियाए उप्पत्तीए दो उच्चनीयसुया ॥१३०॥
वेयणियाईहिं य ते समप्पिया आउपाल-नरवइणो ।
तेण वि निय-पुत्ताणँ कया सहाया इमे सव्वे ॥१३१॥
अस्साय-नीय-गोयासुहनाम-प्पमुह-सुहड-परियरिओ ।
नरयाउपाल-निवई रयणाइसु नियय-नयरीसु ॥१३२॥
आउट्ठिईए चित्तं निच्चं पि करेइ तस्स लोगस्स ।
हडिपक्खेव सरिच्छा जमिमा अच्चंत दुल्लंघा ॥१३३॥

किंच -

रयणाए जहन्नेण वि वाससहस्साइं दस ठिई विहिया ।
उक्कोसओ उ सागरमेगं तव्वासिलोगस्स ॥१३४॥
तिन्नेव सागराइं उक्कोसेणं जहन्नओ एगँ ।
विहिया ठिई निवइणा तेणं सक्करपहपुरीए ॥१३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वालुयपह-नयरीए जहन्नओ तिन्नि सायराइं ठिई ।
सत्तेव य अयराइं उक्कोसेणं पुणो तत्थ ॥१३६॥
पंकप्पहापुरीए जहन्नओ सत्तसागराइं ठिई ।
उक्कोसेण पुणो दस तम्मज्झे मज्झिमा नेया ॥१३७॥
धूमप्पहनामाए पंचमनयरीए दस जहन्नेण ।
उक्कोसेण उ सतरस अयराइं जाण ठिई विहिया ॥१३८॥
छट्ठीए पुण तमप्पहपुरीए अयराइं सतरस जहन्ना ।
बावीस सागराणि उ उक्कोसेणं ठिई विहिया ॥१३९॥
बावीस जहन्नेण उ सत्तमतमतमपुरीए अयराइं ।
तेत्तीस पुणो उक्कोसिया ठिई तेण तत्थ कया ॥१४०॥
उवरिं तु तओ न तरइ समयं पि विहेउ समहियं तत्थ ।
इय एत्तियमेत्तं चिय काउं आउं विओए सो ॥१४१॥
तत्थ य सत्तमियाए तमतमनामाए नरयनयरीए ।
दो चेव पओलीओ कयाओ निग्गम-पवेस, कए ॥१४२॥
नरयतिरियाणुपुव्वी नामाओ सुयहराण पयडाओ ।
एगाए पवेसो चेव निग्गमो चेव बीयाए ॥१४३॥
एआए पओलीए दुगं पि पुण नोवलब्भए काउं ।
सिरिनामराय वसुहाहिवस्स निठ्ठुरभडेहिंतो ॥१४४॥
जम्हा आयट्टेउं तिरिमणुयगईमहापुरीहिंतो ।
लोया खिप्पंति पओलीए नरयाणुपुव्वीए ॥१४५॥
तिरियाणुपुव्विनामयबीयपओलीए जे उ एएहिं ।
निक्कालिज्जंति इओ ते तिरियगईए खिप्पंति ॥१४६॥
रयणप्पहाइयाओ छन्नयरीओ उ जाओ तासिं तु ।
नरयतिरिमणुय-अणुपुव्वि नामियाओ पओलीओ ॥१४७॥
पत्तेयं तिन्नि च्चिय तासु वि नरयाणुपुव्वि नामाए ।
पुव्विं व पवेसो चिय दोहिं य इयरीहिं नीकासो ॥१४८॥
तत्थ वि जो जन्नयरीए निज्जिही तस्स तयणुपुव्वीए ।
निक्कासो न पराए कीरइ नामस्स सुहडेहिं ॥१४९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रयणप्पहनयरीए अन्नाइं वि संति अंतरपुराई ।
देवगइअणुगयाइं भवणाहिववणयराणँ ति ॥१५०॥
तीए जओ बाहल्लं जोयणलक्खं असीइसहसजुयं ।
हेट्ठोवरिमसहस्सं'एक्केकं पुण तहिँ मोत्तुं ॥१५१॥
भवणाहिवइसुराणं अणेगभेयाइ संति भवणाइं ।
पढमसहस्से हेट्ठिम-उवरिमगसयाइ दो मुत्तुं ॥१५२॥
मज्झिमगेसु य अट्ठसु सएसु वणयरसुराण रम्माइं ।
तो साइं नयराइं चिट्ठंति अणेगरूवाइं ॥१५३॥
एएसु य सव्वेसु वि होंति पओलिउ तिन्नि तिन्नेव ।
नवरं तइया देवाणुपुव्विनाम त्ति नायव्वा ॥१५४॥
तीए य पवेसो च्चिय मणुस्स-तिरियाणुपुव्वियाहिं पुणो ।
निय-निय-गईसु वच्चंतयाण निक्कासणं चेव ॥१५५॥
भवणवइ-वणयराणँ आउयचिंता सुराउपालेण ।
दोण्ह वि जहन्नओ दसवाससहस्साइं विहियाइं ॥१५६॥
उक्कोसेण उ भवणाहिवाण उत्तरदिसाए मेरुस्स ।
बलि नाम सुरिंदो जो सागरमहियं ठिई तस्स ॥१५७॥
दाहिणदिसाए चमरो जो तस्स उ सागरोवमं एक्कं ।
इयरेसिं पुण दाहिणदिसाए पलिओवमं सड्ढं ॥१५८॥
उत्तरदिसिट्ठियाण उ दो देसूणाइं हुंति पलियाइं ।
भवणवईणं एवं वंतरदेवाण पुण पलियं ॥१५९॥
जेवि असायप्पमुहा सुहडा निय-निय-पिऊण वयणेण ।
पत्ता साहज्जकए नरयाउयपालदेवस्स ॥१६०॥
तेवि नियसत्तिसरिसं नारयगइ-लोय-भेसणट्ठाए ।
पवियंभिउमाढत्ता निक्करुणं जह तहा सुणह ॥१६१॥
रयणप्पहा-पुरीए मज्झे भवणवइ नाम पयडेसु ।
देवगइ-वरपुरी-पडिबद्धेसु पुरेसु केसुं पि ॥१६२॥
चारित्तमोह-नंदण कसाय-सुहडेहिं विहियपयसेवा ।
बहुमय मिच्छद्दंसण-सचिवा परमाहमिय-तियसा ॥१६३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते वावारेऊणं असाय-उदओ महाभडो बहुसो ।
रयणप्पमुहपुरीसु त्तिसु आइल्लासु लोगस्स ॥१६४॥
छेयण-भेयण-वेयरणितरण-करवत्तफालणाईणि ।
तह तह करावए जह सुहलवमवि लहइ न जणो सो ॥१६५॥
अन्नोन्नुद्धीरियमवि खेत्तसहावुब्भवं च दुहमसहं ।
पयडइ तहा जहा सो क्खणमवि न जणो सुही हवइ ॥१६६॥
अग्गिमगासु पुणो तिसु दुसहाइं दुहाइं होंति दो चेव ।
जम्हा परमाहम्मिय तियसाण न अत्थि तत्थ गई ॥१६७॥
सत्तमपुरीए पुण जं तट्ठाणकयं पि असुहमइघोरं ।
जं विसम-वज्ज-कंटय-मज्झे चिय तत्थ उप्पत्ती ॥१६८॥
एवं च तस्स तारिस असाय परिपीडियस्स लोगस्स ।
सुहवत्ता वि न वट्टइ का पुण अन्नत्थ गमणकए ॥१६९॥
नरयाउवाल-विरइय आउखए होज्ज अन्नहिँगमणं ।
लोगस्स तस्स किं पुण असाय-सुहडा तमणुजंति ॥१७०॥
नरतिरिगइ-नयरीसुं दोसुं चिय निज्जइ इमो जम्हा ।
सिरिनामराय-सुहडेहिं तेण तत्थ वि असायाई ॥१७१॥
तिरियाउपालनिवई तत्तो तिरियगइ नियय-नयरीए ।
पडिबद्धेउं चोद्दससु ब्भूय-गामेसु गंतूण ॥१७२॥
समगं असायनीयागोयासुहनामपमुह-सुहडेहिं ।
एगिंदियाइपाडयपुढवीकायाइगेहेसु ॥१७३॥
जे केइ संति लोया तेसिं चिंतइ भवट्ठिईकालं ।
कायट्ठिइकालं पि हु तट्ठाणं सुन्नकरणत्थं ॥१७४॥
पुढवीकाय-पुरट्ठिय-जणस्स बावीसइं सहस्साइं ।
वासाण भवट्ठिईए कालो उक्कोसओ होइ ॥१७५॥
आउक्काए सत्त उ तिन्नि सहस्साउ वाउकायंमि ।
दस वाससहस्सा उण पत्तेयतरूण उक्कोसो ॥१७६॥
तेओक्काए राइंदियाणि तिन्नेव एवमेसा उ ।
एगिंदि भवठिई बारसवरिसाणि उ बिइंदीण ॥१७७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगुणवन्नदिणाइं भवट्ठिई उण तिइंदिय जियाण ।
मासा छ च्चिय चउरिंदियाण पंचिदियाण पुणो ॥१७८॥
संमुच्छिमाणँ पुव्वकोडी इयराण तिन्नि पलियाइं ।
उक्कोसओ जहन्नं दोसु वि अंतोमुहुत्तं तु ॥१७९॥
जओ अणंत-वणप्फइ-काए तेसिं जहन्नमुक्कोसं ।
अंतोमुहुत्तमेव य एवं एसा भवट्ठिइत्ति ॥१८०॥
कायट्ठिईए कालो पुण मोहमहानिवेण कारविओ ।
तेसिं जहा जहा भे निसुणह अवहिय-मणा होउं ॥१८१॥
अस्संखोसप्पिणि-सप्पिणीओ काएसु चउसु वि कमेण ।
ताओ चेय वणस्सइकाएणं ताउं नियाओ ॥१८२॥
वाससहस्सा संखेज्जया उ बेइंदियाइसु हवंति ।
अट्ठेव भवग्गहणाइं होंति पंचिँदिएसु पुणो ॥१८३॥
एवं भवट्ठिईए कायट्ठिईए य ते निरुंभेउँ ।
असुहदुयस्सरुवे कारवइ असाय-सुहडेहिं ॥१८४॥
एवं असुहावन्नाइणो वि पाएण बायरे काए ।
जम्हा कप्पूरागुरु-पमुहे कत्थ वि सुहावि हु ते ॥१८५॥
नीयागोयस्सुदओ पुण सव्वाए वि तिरियजाईए ।
नीयागोयवसेणं अप्पबहुत्तेण उ विसेसो ॥१८६॥
मणुयगई-नयरीए वि निवई मणुयाउपालअभिहाणो ।
सायासायाइपभूय-सुहड-परिविहिय-साहज्जे ॥१८७॥
पलियाइं तिन्नि उक्कोसेणं गब्भोववन्न-मणुयाण ।
आउट्ठिई जहन्नेणं पुण अंतोमुहुत्तं ति ॥१८८॥
कायट्ठिई पुणो भवगहणाइं अट्ठ हवइ अणवरयं ।
तयणंतरं च मणुयाउपाल-निवई मणूसाण ॥१८९॥
इट्ठ-विओगा पिय-संपओगपमुहाइं कुणइ असुहाइं ।
सारीरमाणुसाइं असायसुहडं निजुंजेउं ॥१९०॥
साओदयाइहिंतो के वि सुहाइं पि अणुहवावेइ ।
नीयागोयाईहिं उ नीयागोयत्तणदुहाइं ॥१९१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जे उण संमुच्छिमया मणुया तेसिं सयावि असुहुदया ।
अंतोमुहुत्तमाउं जहन्नमुक्कोसयं पि धुवं ॥१९२॥
एएसिं उभएसिं वि पुरे पओलीउ पंच चिट्ठंति ।
नरयाणुपुव्विपमुहा जा पंचमिया सिवपओली ॥१९३॥
तत्थ य पवेसनिग्गमविही पओलीसु चउसु जायंति ।
बहुसो पहियं चिय सिवपओलिदारं तु चिट्ठेइ ॥१९४॥
जो पावियमाणुसगइनयरी पज्जत्त-भाव-गिहवासो ।
अभिमय-सुबोह-नरवइ-आणो संमत्तमंतिजुओ ॥१९५॥
वसिऊणं जइणपुरे सुइरं पसरंत अनणु जियविरिओ ।
चारित्त-धम्म-सामंत-दिन्न-असमाण-साहज्जो ॥१९६॥
सिवनयरिँ गंतु-मणो निद्धाडिय-सयल-मोहराय-बलो ।
केवललच्छीए गिहं होऊणं जणिय-जय-चोज्जो ॥१९७॥
हणिऊणं आउमहानिवं पि नामाइ-सुहडमहियं सो
वच्चइ सिवनयरीए उग्घाडिय-सिव-पओलीओ ॥१९८॥
एत्तो चिय एसा संतिया विनेया असंतिया सरिसा ।
जं न लहइ मग्गं पि हु इमीए लोगो अणेरिसओ ॥१९९॥
रयणप्पहाए उवरिल्ल-पयरभूमीए रज्जुमाणाए ।
मज्झपएस-निविट्ठा चिट्ठइ मणुयगइ नाम पुरी ॥२००॥
पणयालीसइ जोयण लक्खा आयाम-वित्थरेहिं पुणो ।
नायव्वो एईए पायारो माणुसनगो ति ॥२०१॥
देवगई - नयरीए राया देवाउपाल नामाओ ।
देवाणमसेसाण वि आउट्ठिइए कुणइ चिंतं ॥२०२॥
तत्थ य संति निकाया चउरो पाएण असमसुहकलिया ।
भवणाहिव-वणयर-जोइसाण वेमाणियाणं च ॥२०३॥
असुरा नागा विज्जा सुवन्न अग्गी य वाउ थणिया य ।
उदही दीव दिसा वित्तिआ इमा तत्थ दस भेया ॥२०४॥
भूय पिसाया जक्खा य रक्खसा किंनरा य किंपुरिसा ।
महोरगा य गंधव्वा अट्ठविहा वाणमंतरया ॥२०५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रयणपहन्नयरीए वि विसए उक्कोसयं जहन्नं च ।
एएसि दुवेण्हँ पि हु चिंता आउट्ठिईए कया ॥२०६॥
चंदाइच्चा गह रिक्ख तारया जोइसाउ पंचविहा ।
तत्थ य ससीण पलियं अब्भहियं वास लक्खेण ॥२०७॥
आइच्चाण उ तं चिय वाससहस्साहियं गहाणं तु ।
संपुन्नमेव पलियं नक्खत्ताणं तु तस्सद्धं ॥२०८॥
ताराण चउब्भागो पलियस्सुक्कोसओ जहन्नाओ ।
तस्सेव अट्ठभागो पुव्वचउण्हं तु चउभागो ॥२०९॥
तेसि पुरा वासाणं हेट्ठिल्लतलो नहंमि रयणाए ।
समभागाओ सत्तहिं नउइंहिं जोयणसएहिं ॥२१०॥
अट्ठहि सएहि सूरो चंदो असिएहिं अट्ठहिं सएहिं ।
उवरिमतलं तु तेसिं नवहिं सएहिं मुणेयव्वं ॥२११॥
सड्ढाए रज्जूए उवरिं विमाणिया सुरा होंति ।
सोहम्माइ दुवालस-कप्पेसुं कप्पसंपन्ना ॥२१२॥
कप्पाइयासु नवसु य गेवेज्जेसुं अणुत्तरेसुं च ।
पंचसु महाविमाणेसु होंति असरिससुहाण निही ॥२१३॥
तेसु य जहन्नमाउं सोहम्मे पलियमेक्कमुवरइयं ।
दो सागरोवमाइं उक्कोसेणं तु तत्थ ठिई ॥२१४॥
ईसाणे वि हु एवं दोसु वि ठाणेसु नवरमहियत्तं ।
कप्पे सणंकुमारे जहन्नओ दोन्नि अयराइं ॥२१५॥
उक्कोसेणं सत्त उ माहिंदे ताइं दोन्नि अहियाइं ।
सत्तेव बंभलोए जहन्नमियरं तु दस ताइं ॥२१६॥
दस चेव जहन्नेणं लंतयकप्पंमि चउदसुक्कोसा ।
सुक्कंमि जहन्नेण चोद्दस सत्तरस उक्कोसा ॥२१७॥
सत्तरस सहस्सारे जहन्नेओ अट्ठदस उ उक्कोसा ।
अडदस जहन्न उक्कोसेगुणवीसाणए कप्पे ॥२१८॥
पाणयकप्पे स चिय जहन्नओ वीसई पुणो इयरा ।
वीस जहन्ना आरणकप्पे इगवीसमियराओ ॥२१९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स च्चिय जहन्नमच्चुयकप्पे उक्कोसओ उ बावीसं ।
इय हेट्ठिल्लुक्कोसा उवरुवरि ठिई पुण जहन्ना ॥२२०॥
ता जाव नवमगेवेज्जगंमि इगतीस अयर उक्कोसा ।
विजयाइसु वि जहन्नो इगतीसियराउ तेत्तीसं ॥२२१॥
सव्वट्ठविमाणे उण अजहन्नुक्कोसओ वि तेत्तीसं ।
एत्तो उण अहिययरं सक्कइ सक्को वि न विहेउं ॥२२२॥
देवाउपाल वसुहाहिवेण एसा ठिई कया ताव ।
पयडेंति नियय-सत्तिं तत्थ असायाइणो वि भडा ॥२२३
देवनिकाएसु जओ चउसु बिइंदाइणो सुरो दसहा ।
जे के वि संति सुरभव संभवि असमाण-सुहनिहिणो ॥२२४॥
तेसिं वि असायसुहडो दुहमसहं देइ जावजीवं पि ।
ईसाविसायपमुहेण मोहकडगेण जगडंतो ॥२२५॥

अविय -

परआणा-करणेणं कस्स वि कस्स वि य परिहवभरेण ।
कुपरियणेणं कस्स वि कस्स वि पररिद्धि-दंसणओ ॥२२६॥
कस्स वि च उणं दट्ठूण अत्थणो गब्भवासपडणं च ।
उप्पायइ दुहमसहं लद्धवयासो असाय-भडो ॥२२७॥
नवसु वि गेवेज्जेसुं तियसा जे संति तेसिं पाएण ।
अहमिंदत्तेणं सुहमेवयस्स उदओ जणइ ॥२२८॥
जत्थ पवेसो लब्भइ आणाए चारित्तधम्मरायस्स ।
देवाणुपुव्वि अभिहाणाए नवरं पओलीए ॥२२९॥
मणुयाणुपुव्वि नामा बीय पओली वि एत्थ अत्थि परँ ।
तीए वि णिग्गमो च्चिय न पवेसो हवइ कस्सा वि ॥२३०॥
तह जइ वि के वि मिच्छत्तमंतिवसवत्तिणो वि इह संति ।
तह वि न तेसि पवेसो जइणपुरावास-विरहेण ॥२३१॥
चारित्तधम्म-नरवइ-आणं उवघेत्तु भावविरहे ।
वसिऊणं जइणपुरे पविसंति तहिँ इहरहा नो ॥२३२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जे पुण सुबोहरायस्स चेव वसवत्तिणो कया पुव्विं ।
सम्मत्त-अमच्चेणं ते जइणपुरे चिरं ठविउं ॥२३३॥
चारित्तधम्मराएण संगया सम्मभावियप्पाणो ।
साओदयसुहडेणं सुहिणो कीरंति अणवरयं ॥२३४॥
किं पुण ठिइक्खएणं तत्तो निव्वासिऊण अणुकमसो ।
मणुयाउपालरन्ना ते नरनयरीए खिप्पंति ॥२३५॥
जे उण पंचोत्तरवरविमाणविणिवासिणोहमिंदसुरा ।
मिच्छत्तमंतिणा सह संगो वि न तेसि कइया वि ॥२३६॥
एत्तो चिय ते संमत्तमंतिसंजोइएहिँ भावेहि ।
एगंतेण सुहोदयरूवेहिं तहिं सया सुहिणो ॥२३७॥
किं पुण एएसिं पि हु चिरकालाओ वि ठिइक्खओ होइ ।
तत्तो खिप्पंति इमे वि माणुसीगब्भवासंमि ॥२३८॥
तयणु सुइरं अपाविय-अवयासो इय असाय नाम भडो ।
लद्धंतरो वियंमभिउमारंभइ किं चि अव्वत्तं ॥२३९॥
किं पुण तक्कालपरिप्फुरंत संमत्तभावसुहडेहिँ ।
पायं पसरंतो पडिहम्मइ तेसिं असायभडो ॥२४०॥
जं विजयाईहिंतो चुया सुरा के वि होंति तित्थयरा ।
केंवि पुण चक्कवट्टी अच्चँतसुइन्नपुन्नभरा ॥२४१॥
के वि हु तत्तो वि चुया जइ वि हु पुरिसा हवंति सामन्ना ।
तह वि हु बहुसुहनिहिणो हवंति एक्कावयाराई ॥२४२॥
जे उण उवेंति इहइं सव्वट्ठाओ विमाणरयणाओ ।
ते सव्वे वि मणूसा नूणं एगावयारत्ति ॥२४३॥
तेसिं सुहमणवरयं पसरइ जो उण हवेइ दुहलेसो ।
सो दुद्धसक्काररसथाले निवरसतुल्लो ॥२४४॥
तह मोहराय कडगे सुहडा जे के वि संति दुद्धरिसा ।
तेसि वि लीलाए च्चिय भंजिय माहप्पमवियप्पं ॥२४५॥
गंतु सुबोहनरवइविसए चारित्तधम्मरायस्स ।
आणं आराहेउं सुइरं वच्चंति सिवनयरिं ॥२४६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह तेसि सिवपुरीए गयाण सयलो वि मोहनरनाहो ।
कम्मपरिणाम - वसुहाहिवो न प्पहवए किं पि ॥२४७॥
न य दुट्ठकम्मबीया इय ते पुणरवि उवेंति संसारे ।
चिट्ठंति पुणो सासयअणंतसुहसायरगय त्ति ॥२४८॥
चउसु वि गइनयरीसुं इय न सुहं अत्थि किं पि संसारे ।
कहियमिणं लेसेण अंतरबहिरंगवयणेहिं ॥२४९॥
वित्थरओ पुण नियमइ विसेसओ बुहयणेण नेयं ति ।
इय जइ तुमे वि इच्छह भो भविया सासयं सोक्खं ॥२५०॥
ता मोहरायचक्कं अवियक्कं सयलमवि दलेऊण ।
आराहिउं चारित्तधम्मरायस्स बलमखिलं ॥२५१॥
गंतूण सिवपुरीए अणुभुंजह सुहसयाइं अणवरयं ।
इच्चाइ बहुवियप्पं जिणवर-वयणं सुणेऊण ॥२५२॥
संजायभवविराओ विहेउ सुत्थं नियस्स रज्जस्स ।
गेण्हइ पयावसूरोऽवणिप्पहू चरणमणवज्जं ॥२५३॥

★ ★ ★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्तावली

–सं. नीलांजना

'सूक्तावली' नामना आ लघु सुभाषित संग्रहने खंभातना शांतिनाथ जैन भंडा ताडपत्रीय हस्तप्रत नं. २६४नी लालभाइ दलपतभाइ विद्यामंदिरनी फोटोस्टेट नकल ३२८७६ ना अंतिम पत्रो नं. २३-२४ परथी तैयार करवामां आव्यो छे.

शांतिनाथ जैन भंडारनी ताडपत्रीय हस्तप्रतोना सूचिपत्रना संपादक मुनि पुण्यविजयजीए[१] २६४ नंबरनी हस्तप्रतमां, सूक्तावली, बोधप्रदीप, सुभाषितरत्नकं अने सूक्तसंग्रह - एम चार संग्रहो छे, तेम जणावेलुं पण हस्तप्रतने अंते आवेला संग्रहनो तेमां निर्देश नथी.

आ हस्तप्रतमां वच्चे आ संग्रहनुं नाम 'सूक्तावली' आपेलुं छे आ ताडपत्र हस्तप्रतमां अक्षरो घणा घसाइ गयेला ने वच्चे वच्चे अक्षरो खूटे पण छे. तेमां त्रेप पत्र नथी, तेथी ४३-४९ श्लोको मळता नथी ने ५०मो श्लोक अधूरो मळे छे. ते ज ६७मो श्लोक पण अधूरो छे तेथी कुल ६९ श्लोकोना आ संग्रहमां पूरा श्लोक ६० छे.

मुनिश्री पुण्यविजयजीए आ हस्तप्रतनो समय विक्रम संवतनी पंदरमी सदी पूर्वार्ध दर्शाव्यो छे तेथी ई.स.नी चौदमी सदीमां आ हस्तप्रत लखाइ हशे एम शकाय.

आ संग्रहना कर्ता / संग्राहकनुं नाम पण मळतुं नथी. संग्रहमां मळतां सुभा परथी तेओ धर्मे जैन हशे एम चोक्कस अनुमान करी शकाय छे. कारणके आ संग्र शरूआतमां जिनेश्वरने वंदन, करवामां आवी छे अने ते उपरांत बीजां सुभाषितोमां धर्मनी प्रशंसा करवामां आवी छे :

न राज्ञामाज्ञाऽत्र प्रभवति परत्र प्रतिकृतौ
न पुत्रो मित्रं वा भवति न कलत्रं न सुजनः ।
न पतिर्वित्तं वा बहुभिरथवा किं प्रलपितैः
सहायः संसारे [विमल?]जिनधर्मः परमिह ॥२१॥

---

१. Muni Puṇyavijayajī, Catalogue of Palm-leaf Manuscripts in th Śāntinātha Jain Bhaṇḍara, Cambay, Part two. (Oriental Institu Baroda, 1966), pp. 412 ff.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ उपरांत आ संग्रहना ३७ थी ४० श्लोकोमां जैन धर्मने लगती बीजी पण अमुक बाबतोनी समज आपवामां आवी छे :

तदासनाद्यभोगश्च तीर्थे तद्वित्तयोजनम् ।
तद्विम्बन्याससंस्कार उर्ध्वदेहक्रियापरा ॥४०॥

प्रत्येक धर्म अने खास करीने जैन धर्म जे गुणो पर विशेष भार मूके छे, ते गुणोनी धर्ममां आवश्यकता दर्शावी छे :

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते
निर्घर्षणच्छेदनतापताडनैः ।
तथैव धर्मो विदुषा परीक्ष्यते
श्रुतेन शीलेन तपोदयागुणैः ॥६१॥

आम आ सुभाषितसंग्रहना कर्तानो झोक जैन धर्म तरफ होवा छतां तेमणे आ संग्रहमां नीति अने धर्मने लगतां मोटाभागनां एवां सुभाषितो आप्यां छे के जे कोइ पण उन्नत जीवन जीववा इच्छनार मनुष्यने उपयोगी थइ पडे. अलबत्त केटलांक सुभाषितोमां व्यावहारिक उपदेश पण व्यक्त थाय छे तो बे-त्रण श्लोको प्रणयने लगता पण आ संग्रहमां जोवा मळे छे.

आ संग्रहमां मळतां सुभाषितोमां नीचेना विषयो पर विचारो रजू थया छे :

सज्जन मनुष्योनुं चारित्र्य, सद्‌गुणोनी समज अने तेमनुं महत्व, दुर्जननी खासियतो, कर्मना सिद्धांतनु सरळ प्रतिपादन, सत्कर्मनुं महत्त्व, वैराग्यमूलक अभिगम अपनाववानी जरूर, जैन धर्मनु महत्त्व, सद्‌गुरुनां लक्षणो अने तेमनी अनिवार्यता अने संसारनी नश्वरता वगेरे.

नोंधवुं घटे के आ सुभाषितो कर्ताए पोते रच्यां होय के तेमने बीजेथी लीधा होय, पण तेमने व्यवस्थित रीते रजू कर्या नथी. दा.त. प्रणयनी भावनाने व्यक्त करता श्लोको (९, १०, ११) पछी चंद्रने लगता अन्योक्ति अलंकार दर्शावता श्लोको आवे छे (१३, १४), ते ज प्रमाणे वैराग्यमूलक श्लोको (२५, २६, २७) पछी वादळने उद्देशीने लखेलो अन्योक्ति श्लोक आवे छे (२८) ने पछी सत्कर्मनुं माहात्म्य प्रतिपादन करतो श्लोक आवे छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ श्लोक संग्रहनी शरूआत जिनेश्वरने वंदनाथी करवामां आवी छे, ज्यारे अंतमां समाप्तिसूचक कोइ श्लोक के लखाण नथी.

आ संग्रहमांना मोटा भागना श्लोको बीजा कोइ सुभाषितसंग्रहमां जोवा मळता नथी. ए हकीकत छे. तेमणे अहीं आपेलो गुणो अंगोनो श्लोक नं. ५२ **लक्ष्मणना** '**सूक्तिरत्नकोश**'मां श्लोक नं. ५०५ तरीके मळे छे. ते ज प्रमाणे आ संग्रहनो श्लोक नं. ६८, भातृहरिना 'शृंगारशतक' मां मळे छे (नं. ५९).

आ संग्रहनां श्लोकोना व्यवस्थित आयोजननी खामी होवा छतां आ लघु संग्रहना केटलाक श्लोकोमां रजू थयेला उमदा अने प्रेरक विचारोने लीधे आ श्लोक संग्रह अगत्यनो बनी रहे छे. आमांना नमूनारूप श्लोको अहीं रजू कर्या छे :

आ संग्रहना कर्तानो सर्वधर्मसमभाव अने पांडित्य नीचेना श्लोकमां केवी सरस रीते व्यक्त थाय छे :

अर्हन् हरो हरिरनादिरनाहतश्च
बुद्धो बुधो निरवधिर्विधिरव्ययश्च ।
इत्याद्यनेकविधनिर्मलनामधेयं
शुद्धाशयः परमहंसमहं नमामि ॥२४॥

मनुष्यो रस्तामां चालतां आगळ मारो निर्वाह केम थशे एनी चिंता करे छे, पण संसार नामना निःसीम मार्गमां आगळनी चिंता वगर स्वस्थपणे चाले छे !

मार्गे लोकः कति[पय]पदक्षेपसाध्ये पुरस्तात्
निर्वाहो मे कथमिति भवेच्चिन्तया व्यग्रचित्तः ।
संसाराख्ये पुनरिह पथि प्रत्यहं लङ्घनीये
निःसीमेऽस्मिन् किमिति कुधियः सुस्थिताः सञ्चरन्ति ॥३२॥

आ सुभाषितोमां दृष्टांत आपीने विचारनुं समर्थन करवामां आव्युं छे.

विना गुरुभ्यो गुणनीरधिभ्यो
जनोऽभि धर्मं न विचक्षणोऽपि
निरीक्षते कुत्र पदार्थसार्थं
विना प्रकाशं शुभलोचनोऽपि ॥४२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टांत अलंकार उपरांत कविए अन्योक्ति अलंकार पण सारी रीते प्रयोज्यो छे, म के,

यत्कृष्णानि दिशां मुखानि तनुषे यद्गर्जसि प्रोषित-
स्त्रीचेतांसि दधासि यद्भयभरं भूयस्तडिद्विभ्रमैः ।
एतद् वारिद ! बाह्यमेव भवतो मध्ये तु नैसर्गिकं
तत्पुष्यत्यमृतं यदत्र जगतां जीवातवे जायते ॥२८॥

आ सुभाषितोमांना मोटाभागना अनुष्टुप् छंदमां रचायां छे अने ते उपरांत बाकीना आर्या, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा वगेरे जाणीता छंदोमां रचायां छे, जेनो ख्याल पाछळ आपेली छंदोनी सूचि परथी आवशे.

आ संग्रहनी फोटोस्टेट नकलनो उपयोग करवा देवा बदल ला. द. विद्यामंदिरना नियामक श्रीजितेन्द्रभाइ शाहनो हुं आभार मानुं छुं.

★

सूक्तावली

कोऽयं नाथ जिनो भवेत्तव वशी नैवं प्रतापी प्रियो
— — — — — — — — — — — — शौर्यावलेपक्रियाम् ।
मोहोऽनेन विनिर्जितः प्रभुरसौ तत्किङ्कराः के वयं
इत्थं यो रतिकामजल्पविषयः सोऽयं जिनः पातु वः ॥१॥

अपायाः [हि] प्रतिपद्य पुण्यभाजामुपायताम् ।
सदा प्रसुवतेऽकस्माद्विपदोऽपि हि संपदः ॥२॥

विद्युद्द्योतैरिवाऽपुण्यैराश्लिष्टाः पुष्पिता अपि ।
भवन्ति निष्फलाः पुंसामाशाश्चूतलता इव ॥३॥

मध्येराजसभं महाजनसभामध्ये वणिग्ममन्दिरे
मान्यानां सदने धनाधिपगृहे हर्म्ये तथा मन्त्रिणाम् ।
विप्राणां श्रमणाश्रमेऽमलधियां मध्ये परेषामपि
पूज्याः शीलयुजो भवन्ति मनुजाः सर्वत्र [देवाः] इव ॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किं किं नोपकृतं तेन किं न दत्तं महात्मना ।
प्रियं प्रसन्नवदनेन प्रथमं येन भाषितम् ॥५॥

सकृदपि गुणाय महतां महदपि दोषाय दोषिणां सुकृतम् ।
तृणमपि दुग्धाय गवां दुग्धमपि विषाय सर्पाणाम् ॥६॥

उपभोगोऽपायपरो वाञ्छति यः शमयितुं विषयतृष्णाम् ।
धावत्याक्रमितुमसौ पुरोऽपराह्ले निजच्छायाम् ॥७॥

आत्मा सर्वगतो यदि प्रियतमाविश्लेषदुःखाङ्कितो
नित्यश्चेद्विरहज्वरेण महता किं नीयते विक्रियाम् ।
प्रागासीत् यदि सक्रियोऽयमधुना [किं] निष्क्रियत्वं गतः
प्रायो भाग्यविपर्यये मयि (?) मुधा सिद्धान्तसिद्धान्यपि ॥८॥

यातु क्काऽपि तव स्वान्तं कान्ते कार्यं त्वया मम ।
यदेवाऽर्थक्रियाकारि तदेव परमार्थसत् ॥९॥

अपि चण्डान(नि)लोद्धूततरङ्गस्य महोदधेः ।
शक्यते प्रसरो रोद्धुं नाऽनुरक्तस्य चेतसः ॥१०॥

अस्माकं बत मण्डले प्रथमतः पत्या करः पात्यते
काञ्चीकुन्तलदेशमध्यविषयान् हित्वा समिद्धश्रियः ।
ज्ञात्वेतीव पयोधरौ मृगदृशौ जातौ विकृष्टाननौ
नो नीचोऽपि पराभवं विषहते किन्तून्नतौ तादृशौ ॥११॥

कुतस्तस्यास्ति राज्यश्री कुतः सन्ति मृगेक्षणाः ।
यस्य शूरं विनीतं च मित्रं नास्ति विनिश्चितम् ॥१२॥

यदिन्दोर्जातियं कथमपि लघुर्लक्ष्मकणिका
विधातुर्दोषोऽयं न तु गुणनिधेस्तस्य किमपि ।
स किं पुत्रो नात्रेर्न किमु पह(?)चूडामणिरसौ
न किं हन्ति ध्वान्तं जगदुपरि किं वा न वसति ॥१३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदिन्दोरन्वेति प्रलयमुदयं वा निधिरपा-
मुपाधिस्तत्राऽयं भवति जनिकर्तुः प्रकृतितः ।
अयं कः संबन्धो यदनुहरते तस्य कुमुदं
विशुद्धाः शुद्धानां ध्रुवमनभिसन्धिप्रणयिनः ॥१४॥

यदिह क्रियते कर्म तत्परत्रोपतिष्ठति ।
मूलसिक्तेषु वृक्षेषु फलं शाखासु जायते ॥१५॥

क्षिपत्वग्नौ दत्तं जलमथ पयोदे पतिरपा-
मपेक्षन्तेऽर्थित्वं न तु गुणमुदारप्रकृतयः ।
इदं चिन्त्यं किन्तु क्व च विनिहितं भस्म भवति
क्व च न्यस्तं स्वस्ति प्रदिशति समस्तस्य जगतः ॥१६॥

वचन मात्रेण माधुर्यं मयूर ! तव जृम्भते ।
उरगग्रसननिस्त्रिंशकर्मभिर्दारुणो भवान् ॥१७॥

महता पुण्यपण्येन क्रीतेऽयं कामि(य)नौस्तवया ।
पारं दुःखोदधेर्गन्तुं त्वर यावन्न भिद्यते ॥१८॥

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम् ।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति ॥१९॥

नाऽऽस्ते मालिन्यभीतेः सकलगुणगणः संनिधानेऽपि येषां
येषां संतोषपोषः सततमपि सतां दूषणोद्घोषणे न ।
तेषामाशीविषा[णा]मिव सकलजगन्निर्निमित्ताहितानां
कर्णे कर्णेजपानां विषमिव वचनं कः सकर्णः करोति ॥२०॥

लक्ष्मीभ्रष्टोऽपि दैवादुदितविपदपि स्पष्टदृष्टान्यदोषो-
प्यज्ञावज्ञाहतोऽपि क्षयभृदपि खलालीकवाक्याकुलोऽपि ।
नैव त्यक्त्वाऽऽर्यचर्यां कथमपि सहजां सज्जनोऽसज्जनः स्यात्
किं कुम्भः शातकौम्भः कथमपि भवति त्रापुषो जातुको वा ॥२१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणवानिति प्रसिद्धः संनिहितैरेव भवति गुणवद्भिः
ख्यातो मधुर्जगत्यपि सुमनोभिः सुरभिभिः सुरभिः ॥२२॥

शिष्टाचार इति (इतीव) विघ्नविहिते शास्तुः प्रमाणीकृतं
शास्त्रं स्यादिति संनिरोध इति वा विघ्नस्य संपद्यताम् ।
शास्त्रादौ कृतबुद्धयो विदधते येनेष्टदेवस्तुतिं
तेनेत्थं भगवानपि प्रववृते प्रज्ञाधनोऽयं कविः ॥२३॥

अर्हन् हरो हरिरनादिरनाहतश्च
बुद्धो बुधो निरवधिर्विधिरव्ययश्च ।
इत्याद्यनेकविधनिर्मलनामधेयं
शुद्धाशयः परमहंसमहं नमामि ॥२४॥

तत्पाण्डित्यं न पतति पुनर्येन संसारचक्रे
सा संप्रीतिर्न पतति पुनर्या कृते वाऽकृते वा ।
ते किं भोगा रतिषु विदुषां ये न वाच्या परेषां
तत्कर्तव्यं किमिह बहुना येन भूयो न भूयः ॥२५॥

तथ्ये धर्मे ध्वस्तहिंसा[प्रब]न्धे
देवे रागद्वेषमोहादिमुक्ते ।
साधौ सर्वग्रन्थसंदर्भहीने
संवेगोऽसौ निश्चलो योऽनुरागः ॥२६॥

अजानन् दाहात्म्यं पतति शलभस्तत्र दहने
न मीनोऽपि ज्ञात्वा बत बडिशमश्नाति पिशितम् ।
विजानन्तो ह्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्
न मुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा ॥२७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत्कृष्णानि दिशां मुखानि तनुषे यद्वाऽर्जसि प्रोषित-
स्त्रीचेतांसि दधासि यद्भयभरं भूयस्तडिद्विभ्रमैः ।
एतद्वारिद ! बाह्यमेव भवतो मध्ये तु नैसर्गिकं
तत्पुष्यत्यमृतं यदत्र जगतां जीवातवे जायते ॥२८॥

नमस्यामो देवान्नु हतविधेस्तेऽपि वशगाः
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलप्रदः ।
फलं कर्मायत्तं यदि किममरैः किं च विधिना
नमः सत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥२९॥

धर्मोऽयं धनवल्लभेषु धनदः कामार्थिनां कामदः
सौभाग्यार्थिषु तत्प्रदः किमपरं पुत्रार्थिनां पुत्रदः ।
राज्यार्थिष्वपि राज्यदः किमथवा नानाविकल्पैर्नृणां
तत्किं यन्न ददाति किं च तनुते स्वर्गापवर्गावपि ॥३०॥

न राज्ञामाज्ञाऽत्र प्रभवति परत्र प्रतिकृतौ
न पुत्रो मित्रं वा भवति न कलत्रं न सुजनः ।
न पतिर्वित्तं वा बहुभिरथवा किं प्रलपितैः
सहायः संसारे [विमल?]जिनधर्मः परमिह ॥३१॥

मार्गे लोकः कति[पय]पदक्षेपसाध्ये पुरस्तात्
निर्वाहो मे कथमिति भवेच्चिन्तया व्यग्रचित्तः ।
संसाराख्ये पुनरिह पथि प्रत्यहं लङ्घनीये
निःसीमेऽस्मिन् किमिति कुधियः सुस्थिताः सञ्चरन्ति ॥३२॥

भवति सुभगमूर्तिः खेचरश्चक्रवर्ती
धनपतिरवनीशो वासुदेवो विपश्चित् ।
किमिह बहुभिरुक्तैर्लभ्यते सर्वमेको
निरवधिभववार्द्धौ दुर्लभो जैनधर्मः ॥३३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभा केयं कोऽहं क इह समयः संप्रति वचः
प्रियं किं सर्वेषां सफलमिदमाहोस्विदफलम् ।
इति प्रेक्षापूर्वं निगदति न यश्चारुवचनं
स यद्वादी मूढो व्रजति निपुणं हास्यपदवीम् ॥३४॥

माता पिता कलाचार्य एतेषां ज्ञातयस्तथा ।
वृद्धा धर्मोपदेष्टारो गुरुवर्गः सतां मतः ॥३५॥

पूजनं चाऽस्य विज्ञेयं त्रिसन्ध्यं नमनक्रिया ।
तस्याऽनवसरेऽप्युच्चैश्चेतस्यारोपितस्य तु ॥३६॥

अल्पस्थानादियोगश्च तदन्ते निभृतासनम् ।
नामग्रहश्च नाऽस्थाने नाऽवर्णश्रवणं क्वचित् ॥३७॥

साराणां च यथाशक्ति वस्त्रादीनां निवेदनम् ।
परलोकक्रियाणां च कारणं तेन सर्वदा ॥३८॥

त्यागश्च तदनिष्टानां तदिष्टेषु प्रवर्तनम् ।
औचित्येन त्विदं ज्ञेयमाहुर्धर्माद्यपीड़या ॥३९॥

तदासनाद्यभोगश्च तीर्थे तद्वित्तयोजनम् ।
तद्बिम्बन्यास-संस्कार ऊर्ध्वदेहक्रिया परा ॥४०॥

समुचितधर्मसमाहितमनुचितपरिहारपूतमुचितज्ञम् ।
सविनयमविप्रतारकमिति धर्मार्थी गुरुं वदति ॥४१॥

विना गुरुभ्यो गुणनीरधिभ्यो
जानाति धर्मं न विचक्षणोऽपि ।
निरीक्षते कुत्र पदार्थसार्थं
विना प्रकाशं शुभलोचनोऽपि ॥४२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

— — — — — — — — — — — — — — — —

— — — — — — — — — ति विषयवारितगतिः ।
बके चान्द्रः सर्वो गुणसमुदयः किञ्चिदधिको
गुणाः स्थाने मान्या नरवर ! न हि स्थानरहिताः ॥५०॥

ये काकिणीमपि महापणहिण्डमान-
रण्डाकरण्डशरणां न गुणा लभन्ते ।
ते बन्धकोविदकुविन्दकरारविन्द-
मैत्रीमवाप्य नृपतीनपि लोभयन्ति ॥५१॥

यत्पयोधरभारेषु मौक्तिकैर्निहितं पदम् ।
तत्प्रच्छादितरन्ध्राणां [गुणाना]मेव चेष्टितम् ॥५२॥

गुणेष्वादरः कार्यो न वित्तेषु कदाचन ।
सुलभं गुणिनां द्रव्यं दुर्लभा धनिनां गुणाः ॥५३॥

गुणिनि गुणज्ञो रमते नाऽगुणशीलस्य गुणिनि परितोषः ।
अलिरेति वनात्कमलं न दुर्दुरास्त्वेकवासेऽपि ॥५४॥

वद भो भट ! किं कुर्मः कर्मणां गतिरीदृशी ।
दुषिधातोरिवाऽस्माकं गुणो दोषाय जायते ॥५५॥

उत्पतति पतति तिष्ठति भूमौ परिलुठति खनति चाऽऽधारम् ।
कर्दमकूपे घटकः सगुणोऽपि न पूरयत्युदरम् ॥५६॥

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
चक्षुश्रोत्राणि जीर्यन्ति तृष्णैका तरुणायते ॥५७॥

दुःखं दुष्कृतसंक्षयाय महतां क्षान्तेः पदं वैरिणः
कायस्याऽशुचिता विरागपदवी संवेगहेतुर्जरा
सर्वत्यागमहोत्सवाय मरणं जातिः सुहृत्प्रीतये
संपद्भिः परिपूरितं जगदिदं स्थानं विपत्तेः कुतः ॥५८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राणा मृत्युभयेन यौवनमिदं वृद्धत्वदोषाहतं
इष्टानिष्टवियोगसंगममहादुःखैः सुखं पीडितम् ।
एवं नाऽत्र सुखं तथाऽपि विरुपे (विरसे) संसारनिम्बद्रुमे
जीवो धर्मरसानभिज्ञहृदयस्तस्मिन् पुनर्धावति ॥५९॥

रहितं महताशोचत (?) रहयति महिमा न जातु कृतमनसः ।
शोचतु जगदात्मानं यत्रैव रविर्दिनं तत्र ॥६०॥

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते
निघर्षणच्छेदनतापताडनैः ।
तथैव धर्मो विदुषा परीक्ष्यते
श्रुतेन शीलेन तपोदयागुणैः ॥६१॥

य एते शृङ्गाग्रस्थितहरितवृक्षाः शिखरिणः
श्रवन्त्यो याश्चैताः प्रचुरसलिलव्याप्तवसुधाः ।
यदन्यद्वा किञ्चिच्चिरमचिरमप्यस्ति भुवने
दिनैः कैश्चिद् यातैस्तदिह खलु सर्वं न भविता ॥६२॥

शुश्रूष स्वसुधर्ममाप्तगदितं मध्यस्थबुद्ध्या त्वमुं
मीमांस स्वगुरून्नमस्कुरु कुरुष्वाऽतुच्छमच्छं मनः ।
सद्दानं स तु वाञ्छितं ननु सतां तत्त्वं मनुष्व स्फुटं
दाक्ष(क्षि)ण्यं भज सज्जनान् सज यज श्रेयस्यघौघं त्यज ॥६३॥

फलान्वितोऽधर्मः यशोऽर्थनाशनः
भवेदपार्थः स्वशरीरतापनः ।
न चेह नाऽमुत्रहिताय यः सतां
मनांसि कोपः स समाश्रयेत्कथम् ॥६४॥

मुच्यते बन्धनाद् वृन्तं वृन्तात्पुष्पं प्रमुच्यते ।
क्लिश्यमानोऽपि दुष्पुत्रैः पिता स्नेहं न मुञ्चति ॥६५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुभेभ्यः स्वेच्छया दद्यात्प्राणान् प्राणी, जयं पुनः ।
नाऽपि पुत्राय शिष्याय गुरवे प्रतिवादिने ॥६६॥

तापं स्तम्वेरमस्य प्रकट[य]ति करः शीकरैः कुक्षिमुक्षन् ।
पङ्काकम्पनाऽऽवहति तटतूलपुणपण्याङ्गनादिभिः (?) ॥६७॥

स्त्रीमुद्रां झषकेतनस्य महतीं सर्वार्थसंपत्करीं
ये मूढाः प्रविहाय यान्ति कुधियो मिथ्या[फला]न्वेषिणः ।
ते तेनैव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिताः
केचित्पञ्चशिखीकृताश्च जटिनः कापालिकाश्चाऽपरे ॥६८॥

वचनीयमेव मरणं भवति कुलीनस्य लोकमध्येऽस्मिन् ।
मरणं कालपरिणतिरियं तु जगतोऽपि सामान्यम् ॥६९॥

★

श्लोकानुक्रमणिका

ानन् दाहात्म्यं.	२७
्यार्यमति.	१९
्येभ्यः स्वेच्छया.	६६
ायाः हि प्रतिपद्य.	२
्पि चण्डानलोद्भूत.	१०
र्हन् हरो हरि.	२४
ल्पस्थानादियोगश्च.	३७
स्माकं बत मण्डले.	११
त्मा सर्वगतो.	८
पतति पतति.	५६
भोगोऽपायपरो.	७
किं नोपकृतं.	५
तस्तस्यास्ति.	१२
कोऽयं नाथ जिनो.	१
क्षिपत्वग्नौ दत्तं.	१६
गुणवानिति प्रसिद्धः.	२२
गुणिनि गुणज्ञो.	५४
गुणेष्वादरः कार्यो.	५३
जीर्यन्ति जीर्यतः.	५७
तथ्ये धर्मे ध्वस्त.	२६
तदासनाद्यभोगश्च.	४०
तापं स्तम्बेरमस्य.	६७
त्यागश्च तदनिष्टा.	३९
दुःखं दुष्कृतसंक्षयाय.	५८
धर्मोऽयं धनवल्लभेषु.	३४
नमस्यामो देवान्ननु.	२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न राज्ञामाज्ञाऽत्र.	३१	यदिह क्रियते कर्म
नाऽऽस्ते मालिन्यभीतेः	२०	यातु क्वापि तव
पूजनं चास्य विज्ञेयं	३६	ये काकिणीमपि
प्राणा मृत्युभयेन.	५९	रहितं महता
फलान्वितो धर्मः.	६४	लक्ष्मीभ्रष्टोऽपि
भवति सुभगमूर्तिः	३३	वचनमात्रेण माधुर्यं
मध्येराजसभं.	४	वचनीयमेव मरणं
महता पुण्यपण्येन	१८	वद भो भट ! किं कुर्मः
माता पिता कलाचार्य.	३५	विद्युतैरिव
मार्गे लोकः कतिपय.	३२	विना गुरुभ्यो गुण.
मुच्यते बन्धनाद् वृन्तं	६५	शिष्टाचार इतीव
य एते शृङ्गाग्र.	६२	शुश्रूष श्रुत धर्ममा.
यत्कृष्णानि दिशां	२८	सकृदपि गुणाय
यत्पयोधरभारेषु	५२	सभा केऽयं कोऽहं
यत्पाण्डित्यं न पतति	२५	समुचितधर्म.
यथा चतुर्भिः कनकं	६१	साराणां च यथाशक्ति
यदिन्दोरन्वेति	१४	स्त्रीमुद्रां झषकेतनस्य
यदिन्दोर्जातोऽयं	१३	

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छंदसूची

ष्टुप्	२, ३, ५, ९, १०, १२, १५, १७, १८, १९, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ५२, ५३, ५५, ६५, ६६	= २१
र्या	६, ७, २२, २३, ४१, ५४, ५६, ५७, ६०, ६९	= १०
वज्रा	२६	= १
द्रवज्रा	४२	= १
क्रान्ता	२५, ३२	= २
लिनी	३३	= १
ंततिलका	२४, ५१	= २
स्थबिल	६१, ६२, ६४	= ३
र्दूलविक्रीडित	१, ४, ८, ११, २८, ३०, ५८, ५९, ६३, ६८	= १०
खरिणी	१३, १४, १६, २७, २९, ३१, ३४, ५०	= ८
ग्धरा	२०, २१, ६७	= ३
		६२

★★★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पसूत्रमें भद्रबाहु-प्रयुक्त 'याग' शब्द

-विजयशीलचन्द्रस्

आर्य भद्रबाहुस्वामी भगवान महावीरकी शिष्य-परंपरामें षष्ठ पट्टधर एवं अन्तिम श्रुतकेवली भी[१]। श्वेताम्बर-परंपरा-मान्य आगमग्रन्थ श्रीकल्पसू में उनको आर्य यशोभद्रके शिष्य प्राचीनगोत्रीय आर्य भद्रबाहुके नामसे पहच गए हैं।

जैन श्रमणसंघके प्रधान श्रुतधरपुरुष होनेके अधिकारसे उन्होने बहुत सा आगमिक ग्रंथरचनाएं[३] की है, जिसमें एक है दसासुअक्खंध सूत्र। छेदसूत्र रूपसे प्रसिद्ध इस आगमग्रंथका आठवाँ अध्ययन है कल्पसूत्र। इस कल्पसूत्रव स्वयं श्रीभद्रबाहुस्वामीने श्रीमहावीरस्वामी-प्रमुख तीर्थंकर चरित्र, स्थविराव तथा सामाचारी - इन तीन विभागोंमें बांट दिया है। यह समूचा कल्पस् श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघकी परंपरामें, कई शतियों से, प्रतिवर्ष, पर्युषणा प के पिछले पांच दिनोमें, सर्वत्र एवं जाहिरमें पढा जाता है। साधुगण इसव सार्थ-सटीक वाचन करता है और उपस्थित शेष सर्व संघ श्रवण करता है।

चूंकि श्रीभद्रबाहु जन्मना ब्राह्मण थे और कर्मणा जैन श्रमण थे, अतः इ दोनों परंपराओंको संकेतित व संकलित करनेवाला एक विलक्षण शब्द प्रयो उन्होने कल्पसूत्रमें किया है, जो उनके जैसे समर्थ श्रुतधर ही कर सकते थे। व शब्द है - 'याग'। सूत्र इस प्रकार है :-

"तए णं से सिद्धत्थे राया दसाहियाए ठिइपडियाते वट्टमाणीए सइए साहस्सिए य सयसाहस्सिए य जाए य दाए य भाए य दलमाणे य दवावेमा य"

प्रसंग ऐसा है कि वर्धमानस्वामीके जन्म होनेके पश्चात् उनके पिता रा सिद्धार्थ दशदिवसीय स्थितिपतिता अर्थात् कुलमर्यादा पालते हैं। उस सर्वप्रथम वे शतिक, साहस्रिक व शतसाहस्रिक 'याग' कर रहे हैं व करवा हैं। यहां 'याग' का तात्पर्य क्या हो सकता है?। वैसे 'याग' शब्द सि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ह्मण-परंपरामें प्रचलित है, और उसका मुख्य अर्थ है यज्ञ[५]। यज्ञ का तात्पर्य
-स्मार्त्त उन विविध यज्ञोंसे हो सकता है जो कि ब्राह्मणीय कर्मकाण्ड-
थोंमें वर्णित हैं। किन्तु कल्पसूत्र स्वयं जैन आगमग्रंथ है और फिर एक जैन
धर श्रमणने उसकी रचना की है, तो उसमें यज्ञार्थक 'याग' शब्दका प्रयोग
ला कैसे हो सकता है ?।

यह स्वयंस्पष्ट है कि याग शब्दका ऐसा प्रयोग ग्रंथकार महर्षिके ब्राह्मण-
स्कारों को ही उजागर करता है। किन्तु उनके दिमागमें इस शब्द-प्रयोग के
मय 'याग' का तात्पर्य 'यज्ञ' परक नहीं है, यह भी उतना ही स्पष्ट है। फिर
ाग' जैसे ब्राह्मण-परंपरामें रूढ शब्दको जैन-परंपरामें प्रयुक्त करना, यह उनके
धिकारमण्डित सामर्थ्यका भी द्योतक बन जाता है।

विवरणकारों के अनुसार 'याग' शब्द यहां 'पूजा' के अर्थमें[६] प्रयोजित है
भगवान महावीरके पिता तेईसवें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथकी परंपरामें श्रावक[७] थे,
ह बात तो शास्त्रसिद्ध है। और उन्होंने अपने यहां पुत्रजन्म हुआ, इस निमित्त को
कर अनेकविध पूजाएं की व करवाई थी। उसी पूजाके अर्थमें यहां 'याग'
ब्द प्रयुक्त है; अन्य अर्थका यहां अवसर ही नही है।[८]

कोश भी 'याग' के इस अर्थको समर्थित करता है[९], अतः 'याग' को
जार्थक माननेमें आपत्ति भी नहीं होगी।

यद्यपि यहां एक प्रश्न हो सकता है : उक्त सूत्रमें कर्त्ताने 'जाए य दाए य
ाए य दलमाणे य दवावेमाणे य' ऐसा लिखा है। वहां क्रिया है देनेकी व
लानेकी, जिसका अनुबंध 'दाय' व 'भाग' इन दोनों के साथ तो ठीक ढंगसे हो
ता है। किन्तु 'याग' के साथ 'दलमाणे य दवावेमाणे य' का संबन्ध किस
ह हो पाएगा ?। 'याग' तो करने-कराने की चीज है, 'देने-दिलाने' की नहीं।
यद इसी प्रश्नको महत्त्व देकर आ. देवेन्द्रमुनि शास्त्रीने अपनी व्याख्यामें[१०]
गका अर्थ 'पूजा - सामग्रियां' कर दिया है, जो कि 'दी जा सकती है'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु यागका यह अर्थ वास्तविक नहीं हो सकता। यह अर्थ लक्षणा मददसे ही प्राप्त हो सकेगा, अभिधाकी दृष्टिसे कभी नहीं। फिर यह अर्थ को सम्मत भी नहीं है, एवं पुराने विवरणकारोंने भी कहीं नहीं स्वीकारा या दिख है। विवरणकारों का आशय, शायद, ऐसा मालूम होता है कि वे 'जाए य' साथ अनुबंध रखनेवाली क्रिया को यहां अध्याहृत[११] मानके चले हैं, और सुसंगत भी प्रतीत होता है। अवास्तविक लक्षणाप्राप्त अर्थ स्वीकारनेकी ब वास्तविक वाक्यशेष स्वीकारना अधिक उचित भी बनेगा।

"जाए य दाए य भाए य दलमाणे य दवावेमाणे य" इस वाक्यमें ' 'दाए' 'भाए' - इन तीनों पदों को सप्तम्यन्त मान लिया जाय और उनका 'यागमें, भागमें व दायमें देते - दिलाते' ऐसा किया जाय तो ठीक लगत क्योंकि वे राजा सर्व धर्मोंको आदर देनेवाले थे, अतः 'याग' ब्राह्मणधर्म क्रिया भले हो, किन्तु राजाके यहां पुत्रजन्म होनेकी खुशालीमें सभी धर्मके अपनी अपनी पूजाविधि करते होंगे और राजा उसमें उनको समर्थन देता हो ऐसी भी एक कल्पनाको यहां अवकाश है।

परन्तु यह कल्पना अवास्तविक लगती है। क्योंकि यदि 'यागमें, द व भागमें देना-दिलाना' ऐसा अर्थ किया जाय तो प्रथम तो 'दी जानेवाली अध्याहारसे या वाक्यशेषसे ढूंढनी पडेगी। क्योंकि जो 'दाय, भाग' दे क्रियाका कर्म था, वह तो अब अधिकरण-कारक बन गया, अतः कर्म अध्याहृत ही रह जाता है! और अब उसे वाक्यशेषसे लाना होगा। हो पाए

ऐसा वाक्यशेष कितना दूराकृष्ट, काल्पनिक, अवास्तविक एवं अप्रमा होगा! कम से कम कोई भी मान्य विवरणकारका समर्थन तो उसे नह मिलेगा।

दूसरी बात, यह उस समयकी बात है, जिस समयमें याग बहुल हिंसात्मक ही होते थे। एक राजा अन्य धर्मोंको समर्थन देता था उसका अर्थ नहीं कि वह हिंसात्मक यागोंको भी समर्थन भी देता था। राजा सिद्धार्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्मका पार्श्वापत्य श्रमणोपासक था। वह कभी भी हिंसात्मक यागोंका समर्थन कर नहीं सकता। क्योंकि ऐसे समर्थनमें तो अहिंसाका मूल जैन सिद्धांत ही खतम हो जाता। और अपने यहां पुत्र जन्मकी खुशाली जैसे मांगलिक अवसर पर ऐसा जैन राजा हिंसा को उत्तेजन दे – यह बात ही नितान्त असंभवित है।

और तीसरी बात : सभी विवरणकारोंने 'जाए' को द्वितीयान्त पद ही माना है। यावत् पंडित बेचरदास दोशीने भी अपने सूत्रानुवादमें[१२] यागोने – देवपूजाओने, दायोने – दानोने अने भागोने' ऐसा ही अर्थ स्वीकारा है। इस बातको भी हम कैसे नजरअंदाज करेंगे ?।

यद्यपि ज्ञाताधर्मकथांगमें प्रथम अध्ययन (मेघकुमार–ज्ञान) में भी यही पाठ–वर्णक देखने मिलता है, और वहां एक पाठांतर भी है – "जाएहि, भाएहि, दाएहि य"। यहां तीनों पद तृतीयान्त है, जिसका मतलब है – यागैः, भागैः, दायैः। अर्थात् यागों द्वारा, भाग द्वारा, दाय (दान) द्वारा। किन्तु वहां भी जाए, भाए, दाए – ऐसा पाठ तो है ही। और द्वितीयान्त हो या तृतीयान्त, 'याग' पद होगा तो 'पूजा' परक ही, उसमें कोई तफावत नहीं पडता है।

अन्ततः यह सिद्ध होता है कि कल्पसूत्रमें प्रयुक्त 'याग' शब्द 'देवपूजा' परक है, और आर्य भद्रबाहुस्वामीने अपनी विलक्षण प्रतिभाके उपयोग द्वारा, उनके समयमें हिंसात्मक कर्मकाण्डोंमें रूढ बन गये हुए इस 'याग' शब्दको, कल्पसूत्रमें प्रयुक्त करके एक अजीब–सा नया ही मोड दे दिया है, और इसके द्वारा 'हिंसात्मक याग' का गर्भित निषेध भी कर दिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पणी

१. (1) यशोभद्रः सूरिस्तदनु समभूद् विश्वविदितः
ततः सूरिः ख्यातोऽजनि जगति सम्भूतिविजयः ।
तथा भद्राद्बाहू रचितवरनिर्युक्तिततिको
वराहाऽमर्त्योत्थं ह्यशिवमहरद् यः स्तवनतः ॥३॥
— गुरुपर्वक्रमवर्णनम् । कर्त्ताः गुणरत्नसूरिः । र.सं. १४६६
पट्टावली समुच्चयः १, सं. मुनिदर्शनविजय-त्रिपुटी । प्रका. ई.१९३३
चारित्र स्मारक ग्रंथमाला, वीरमगाम ।

(2) छट्ठो संभूय-भद्दगुरू ॥
— वा. धर्मसागरकृत तपागच्छपट्टावली । गा. ३ ॥ एजन
पृ.४२ ॥

२. (1) तं जहा – थेरे अज्जभद्दबाहू पाईणसगोत्ते ॥
कल्पसूत्र, पृ. २८८ । संपा. आ. देवेन्द्रमुनि शास्त्री । ई. १९७२ । तारकगुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर ॥

(2) भद्दबाहुं च पाइन्नं ।
नंदीसूत्रगत पट्टावली, गा. २४ ॥
पट्टावलीसमुच्चय-१, पत्र १० । संपा. मुनिदर्शनविजयजी, ई. १९३३
वीरमगाम ॥

३. कल्पसूत्रका हिन्दी विवरण : आ. देवेन्द्रमुनि शास्त्री । ई. १९७३ पृ. २८८ ॥
"दशाश्रुत, बृहत्कल्प, व्यवहार और कल्पसूत्र ये आपके द्वारा रचे गये हैं । आवश्यकनिर्युक्ति आदि दस निर्युक्तियों की रचना भी आपने की है ।"

४. "यागः, पुं । इज्यते इति । 'यज्ञः' इत्यमरः । तत्र श्रौताग्निकृत्य हविर्यज्ञ सप्त० ॥"
— शब्दकल्पद्रुम-४, स्यार-राजा राधाकान्तदेव बाहादुर, कलकत्ता ।
शकाब्दः १८१४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पसूत्र : संपा. मुनि पुण्यविजयजी, पृ. ३४ । प्र. नवाब, अमदावाद. ई. १९५२ ॥

"यागान् - देवपूजाः " ।

— सन्देहविषौषधि-कल्प. टीका । जिनप्रभसूरिकृत । (र.सं. १३६४)। प्र. हीरालाल हंसराज, जामनगर, ई. १९९३, पृ. ८८ ॥

"समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासावच्चिज्जा समणोवासगा यावि होत्था ।"

— आचारांग सूत्र : श्रुतस्कंध २, चूलिका ३ ॥ सं. मुनि जम्बूविजय । पृ. २६५ । प्र. महावीर जैन विद्यालय, मुंबई । ई. १९७७ ॥

(1) "यर्जी देवपूजायां इति धातोर्यागान् - देवपूजाः, देवशब्देनाऽर्हत्प्रतिमा वाच्यतयाऽवगन्तव्याः । यतो भगवन्मातापित्रोः श्रीपार्श्वनाथापत्यत्वेन श्रमणोपासकत्वादन्याभिधेयत्वासम्भवः ।"

– कल्प. किरणावली । वा. धर्मसागरकृत । पत्र ८७/२ । प्रका. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर । ई. १९१२ ॥

(2) "याग अनेक कर्या कह्यां , श्रीसिद्धारथ राजे रे ,
ते जिनपूजना कल्पमां , पशुना याग न छाजे रे
श्रीजिनपासने तीरथे , समणोपासक तेहो रे ।
प्रथम अंगे कह्यो तेहने , श्रीजिनपूजानो नेहो रे"

— वीरस्तुतिरूप हुंडी-स्तवन, कर्ता : वा. यशोविजयजी, ढाल ३, गा. १२-१३ । प्रका. सलोत अमृतलाल अमरचंद पालीताना, वि.सं. १९७९ ॥

यागः । . . . . . गन्धादिना देवपूजायाम् । "गन्धपुष्पादिना देवपूजा यागोऽभिधीयते" ।

— शब्दार्थचिन्तामणि, कर्त्ता : सुखानन्दनाथ, उदयपुर । वि.सं. १९४२ ॥

"लाखों प्रकारके यागों (पूजा सामग्रियां)"

— कल्पसूत्र, हिन्दी विवरण पृ. १३८ : आ. देवेन्द्रमुनि शास्त्री ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. "यागान् - अर्हत्प्रतिमापूजाः कुर्वन् कारयंश्चेति शेषः" ॥
— कल्प. सुबोधिका , पृ. १३६/१ कर्त्ता : उपा. विनयविजयजी ।
प्र. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, ई. १९१५ ॥

१२. पं. बेचरदास दोशी : कल्पसूत्र - अनुवाद, प्र. साराभाई नवाब, अमदावाद.
पृ. ३५. ई. १९५२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डॉ. मधुसूदन ढांकीने श्रीहेमचन्द्राचार्य चन्द्रक-प्रदानना समारोहनो तथा 'आर्य भद्रबाहु और उनका साहित्य' विषयक संगोष्ठीनो संक्षिप्त हेवाल

श्रीहेमचन्द्राचार्य निधि अमदावादना उपक्रमे ता. १०-४-९९ना दिने, गुजरातना विख्यात मनीषी डॉ. मधुसूदन ढांकीने 'श्रीहेमचन्द्राचार्य चन्द्रक' अर्पण करवानो एक भव्य समारोह, शेठ हठीसिंह जैन मंदिर-अमदावादना विशाल परिसरमां, ऊजवाई गयो.

आ समारोहने जैनाचार्य श्रीविजयदेवसूरिजी, हेमचन्द्राचार्य निधिना प्रेरक आचार्य श्रीविजयसूर्योदयसूरिजी अने अन्य जैनाचार्यो तथा मुनिगण तेमज साध्वीगणनुं सानिध्य मळेलुं, तो समारोहमां अतिथिविशेष तरीके अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ओफ इन्डियन स्टडीझना डायरेक्टर डॉ. प्रदीप महेंदीरत्ता, जैन अग्रणी शेठ श्रीश्रेणिक कस्तूरभाई श्रीदीपचंद गार्डी वगेरे नामांकित महानुभावोनी उपस्थितिए आ समारोहने एक विशिष्ट परिमाण बक्ष्युं.

समारोहनुं सफळ संचालन ला. द. भा. सं. विद्यामंदिरना डायरेक्टर डॉ. जितेन्द्र शाहे कर्युं हतुं. समारोहमां प्रा. उजमशी कापडिया, डॉ. एस. आर. बेनर्जी, डॉ. सागरमल जैन, पं. अमृतभाई भोजक, डॉ. कुमारपाल देसाई वगेरे विद्वानोए तेमज श्रीअरविंद लालभाई, पंकज सुधाकर शेठ, कनकभाई शेठ वगेरे सदगृहस्थोए प्रसंगोचित वक्तव्य आप्यां हतां.

आ समारोहमां डॉ. ढांकी द्वारा संपादित ग्रंथ **'Huttheesing Heritage'** नामे (सचित्र-अंग्रेजी)नुं तेमज हठीसिंहना देरासरनी शिल्पसमृद्धि प्रदर्शित करतां **Post Cards** ना एक सेटनुं विमोचन पण शेठ ह.के. ट्रस्टना आश्रये योजायुं हतुं.

डॉ.ढांकीना गौरवना आ अवसरने अनुलक्षीने ज, आ ज स्थानमां ता.१०-११ एप्रिल ९९ना बे दिवसोमां एक विद्वत्संगोष्ठीनुं पण आयोजन, श्रीहेमचन्द्राचार्य निधिना उपक्रमे राखवामां आव्युं हतुं

बे दिवस अने त्रण बेठकोमां व्याप्त आ संगोष्ठीनो विषय हतो. "आर्य भद्रबाहु और उनका साहित्य" आमां भाग लेवा माटे संस्थाना आमंत्रणने स्वीकारीने नामांकित विद्वानो दूरदूरथी उपस्थित थया हता.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रणे बेठकोना अध्यक्षपदे क्रमशः डॉ. मधुसूदन ढांकी, डॉ. सत्यरंजन बेनर्जी तथा डॉ. सागरमल जैन रह्या हता. तो भाग लेनारा विद्वानो हताः डॉ. के. आर. चंद्रा, डॉ. वी.पी. जैन, डॉ. प्रेमसुमन जैन, डॉ. बेनर्जी, डॉ. सागरमल जैन, डॉ. ढांकी, प्रा. अशोककुमार सिंह, कमलेशकुमार जैन, प्रा. के.वी. महेता, रूपेन्द्रकुमार पगारिया, अरुणा आनंद, प्रा. जगतराम भट्टाचार्य, प्रा. दीनानाथ शर्मा, प्रा. नारायण कंसारा, धरमचंद जैन, पारुलबेन मांकड, निरंजना वोरा, समणी कुसुमप्रज्ञा एवं अमितप्रज्ञा वगेरे.

संगोष्ठीनां केटलांक वक्तव्यो विचारोत्तेजक तथा शोधपूर्ण रह्यां. चर्चा पण जीवंत तथा स्तरीय रही. अलबत्त, हजी आवी संगोष्ठीओ वधु विचारोत्तेजक तथा अर्थपूर्ण बने ते माटे वधु सघन आयोजननी आवश्यकता सौने अवश्य वरताई, छतां संगोष्ठीनी सार्थकता तो अवश्य जणाई.

ता. १०-४-९९नी रात्रे एक भक्तिसंध्यानो सुमधुर तथा अनौपचारिक कार्यक्रम राखवामां आवेलो जेमां संगीतकार श्रीकिरीट ठक्कर, विद्वान प्राध्यापक तथा संगीतज्ञ श्रीलाभशंकर पुरोहित, श्रीधैवत शुक्ल तथा श्रीजाज्वल्य शुक्ल-आ सर्वनां कंठ्य-वाद्य संगीतनो तेमज गुजरातना अग्रणी कवि श्रीराजेन्द्र शुक्लनां काव्य पठननो अमूल्य ल्हावो उपस्थित श्रोतागणे प्राप्त कर्यो हतो.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशन – वर्तमान

ताजेतरमां नीचे जणावेलां पुस्तको प्रकाशित थयां छे. आम तो अढळक उपयोगी साहित्य निरन्तर छपातुं ज रहे छे. परंतु तुरंत जेनुं स्मरण थाय छे तेनी विगतो अत्रे नोंधवामां आवे छे.

वाचकगण तरफथी पण जो आ प्रकारना प्रकाशित के प्रकाशित थनार साहित्य विशे विगत नोंध मळे, तो तेने यथायोग्य स्थान आपवानो प्रयत्न रहेशे :

१. **इसिभासियाइं शब्दकोश** –डॉ. के. आर. चंद्र

(ई. १९९१) प्र. प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, अमदावाद

'इसिभासियाइं' एक अतिप्राचीन, महत्त्वपूर्ण जैन आगमग्रंथ छे. देश - विदेशना विद्वानोमां तेनुं मोटुं आकर्षण हमेशां रह्युं छे. आ आगम ग्रंथनी समीक्षित संशोधित वाचनामां आवता समग्र शब्दोनो सार्थ कोश प्रा. चंद्रे आ पुस्तक द्वारा आपेल छे.

२. **ग्रन्थत्रयी** स्व. आचार्य विजयनन्दनसूरिजी

(१९९१) सं. विजयशीलचन्द्रसूरि, प्र. जैन ग्रंथ प्रकाशन समिति, खंभात

आ पुस्तकमां स्व. आचार्यश्री –रचित प्रतिष्ठातत्त्व, आचेलक्यतत्त्व, पर्युषणातिथिविनिश्चय–आ त्रण संस्कृत ग्रंथोनो समावेश थयो छे.

३. **नन्दनवनकल्पतरु** (१) सं. कीर्तित्रयी

(१९९१) प्र. जैन ग्रंथ प्रकाशन समिति, खंभात

स्व. आचार्यश्री विजयनन्दनसूरिजीनी जन्मशताब्दी (सं. १९५५–२०५५)ना अवसरने अनुलक्षीने आ. श्रीशीलचन्द्रसूरिजी अने तेमना त्रण साथी साधुमहाराजोए करेली नूतन संस्कृत रचनाओ धरावता छमासिक सामयिकनो आ प्रथम अंक छे. दर छ महिने एक अंक आपवानो ख्याल छे, तेवुं प्रास्ताविक निवेदन जोतां जणाय छे.

अंगविज्जा–पइन्नयनुं पुनः प्रकाशन

प्राकृत ग्रन्थ परिषद्‌ना उपक्रमे, आगम प्रभाकर मुनिराज श्रीपुण्यविजयजी द्वारा संपादित प्रकाशित प्रथम ग्रंथ 'अंगविज्जा' आजे अलभ्य छे. तेनुं यथावत् पुनर्मुद्रण हाथ धरवामां आव्युं छे. आमां आगोतरा ग्राहकनी स्कीम पण करवामां आवी छे. (ए माटे सरस्वती पुस्तक भंडार, अमदावादनो संपर्क साधवानो रहे छे.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनागमों की मूल भाषा

उपरोक्त विषयने लईने एक विद्वत्संगोष्ठी ई-१९९७मां अमदावादमां योजायेली, तेमां रजू थयेला विद्वत्तापूर्ण निबन्धोना संचयरूप आ ग्रंथ विस्तृत भूमिका वगेरे साथे प्रकाशनाधीन छे. संपादक डॉ. के. आर चन्द्र छे. प्रकाशक - प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी.

थोडांक नवां प्रकाशनो

(1) BRHAT-KALPA-NIRYUKTI of Bhadrabāhu and BRHAT KALPA-BHASYA of Sanghadāsa.

(2) TEXT IN ROMAN, NOTES AND

SELECTIVE GLOSSARY. Part I, II, III,

edited by B.BOLLEE. 1998 Stuttgart.

(3) THERIGĀTHA

Pāda Index and Reverse Pāda Index by

M. YAMAZAKI and Y. OUSAKA. 1998 TOKYO.

(4) SONG ON YOGA Inandev Studies I and II Texts and teachings of the Māharāstrian Naths. Catharina Kiehnle 1997 Stuttgart.

(5) THE CONSERVATIVE VAISNAVA Anonymous songs of the Jnandev Gatha, Jnāndev studies III. Catharina Kiehnle 1997 Stuttgart.

(6) CATALOGUE of the papers of Ernst Leumann, 1998 Franz Steiner Verlag Stuttgart.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टूंक नोंध

(१)

– विजयशीलचन्द्रसूरि

भोप्पय – भोप्प – भोपो – भोवो – भूवो

मलधारी आचार्यश्री श्रीचन्द्रसूरिकृत सिरिमुणिसुव्वयजिणिंदचरियं (संवत् ११९३)मां 'भोप्प' शब्दनो 'भूवा' अर्थमां प्रयोग थयो छे. ला. द. ग्रंथश्रेणिमां रूपेंद्रकुमार पगारिया द्वारा संपादित – प्रकाशित (ई. १९८९)आ ग्रंथना पृ. २३२ अने गा. ७४८७मां आ शब्दनो प्रयोग आ प्रमाणे छे.

तीसे देवीए **भोप्पयस्स** आएसकारओ एक्को ।
तस्स य धूया सा बालविहविया दुलहिया नाम ॥

संक्षेपमां कथाप्रसंग एवो छे के दंतपुरना राजा महाबलनो मंत्री सुविचार, तेनो पुत्र सुदर्शननी उत्पत्तिनी कथा कुमार श्रीवर्मने कही रह्यो छे. तेमां ते कहे छे के 'दंतपुरनी दक्षिणे चार कोश दूरे "**खीबंज**" देवीनुं मंदिर छे, तेना '**भोप्पय**'नो आज्ञाकारी एक मनुष्य छे, अने तेनी बालविधवा दुर्लभिका नामे दीकरी तथा राजाना परिणयनुं परिणाम सुदर्शन छे.'

आ संदर्भमां '**भोप्पय**' (गा. ७४८७, ७४९१, ७५०९, ७५११, ७५२०) तथा '**भोप्प**' (गा. ७४८९, ७५०५) आम बे रूपमां भोप्प शब्दनो प्रयोग जोवा मळे छे. आखा वर्णन परथी फलित थाय छे के भोप्पय एटले देवी-मंदिरनो पूजारी, जे 'माताजीना भूवा' तरीके वर्तमानमां ओळखाय छे ते.

आम छतां सांप्रत 'भूवो' ते ज 'भोप्प' एवुं स्पष्ट समजायुं न हतुं. एमां थोडा वखत पूर्वे एवुं बन्युं के अमारा पादविहार दरम्यान, एक गाममां डीसा तरफनां पण मूळे मारवाड प्रदेशनां एक श्राविका बहेने वातवातमां एक एवो वाक्यप्रयोग कर्यो, जे सांमळतां हुं चमकी गयो. तेमणे कह्युं, "मारे आ छोकरा माटे हवे कोंई **देवा-भोपा** करवा छे." आमां एमणे 'भोपा' शब्द स्पष्टतयां 'भूवा' एवा अर्थमां ज प्रयोज्यो हतो. मने १२मा सैकामां प्रयोजायेला 'भोप्पय'नुं पगेरुं आम अनायासे जडी आव्युं.

उपर नोंध्युं छे तेम भोप्पयमांथी ज भोप्प-भोपो बनीने काळांतरे ते भोवा – भूवामां रूपांतरित थयुं होय तेम मने समजायुं छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२)

'श्राद्धदिनकृत्यसूत्र' ए जैन संघमां बहु प्रसिद्ध, वारंवार वंचातो अने सर्वमा
ग्रंथ छे. आ ग्रंथ मूळे प्राकृत भाषामां छे, तथा पद्यबद्ध छे. तेना पर बे वृत्ति प्रकाशित
१. अज्ञातकर्तृक अवचूरि, २. तपागच्छीय आ. श्रीदेवेन्द्रसूरिकृत बृहद्वृत्ति. आमां
प्रथम वृत्ति ई. १९२९मां सत्यविजय स्मारक जैन ग्रन्थमाळामां मुनि मानविजयजी
संशोधित थईने प्रकाशित थई छे, ज्यारे बृहद्वृत्ति वि.सं. १९९४मां आ.
आनन्दसागरसूरिजी द्वारा संशोधित थईने रतलामनी ऋषभदेव केशरीमलजीनी पेढी तरफ
प्रगट थई छे.

आमां एक द्विधा वर्ते छे. श्रीआनन्दसागजी महाराजे आ श्राद्धदिनकृत्यसू
बृहद्वृत्तिकार श्रीदेवेन्द्रसूरिनी ज रचना होवानुं स्थापित कर्युं छे. ग्रंथना मथाळे ज ते
आलेख्युं छे के "श्रीमद् देवेन्द्रसूरिविरचितं स्वोपज्ञविवरणसमेतं श्रीश्राद्धदिनकृत्यसूत्रं
प्रतिना उपक्रममां पण तेमणे "ग्रन्थोऽयं श्राद्धदिनकृत्यनाम्न। विहितः ०श्री देवेन्द्रसूरिभि
आवुं नोंध्युं छे.

मुनि श्रीदर्शनविजयजी (त्रिपुटी) कृत "जैन परंपरानो इतिहास -३ (ई.१९
अहमदाबाद)मां पण आ ग्रंथने देवेन्द्रसूरिकृत ग्रंथोनी यादीमां ज निर्देश्यो छे (पृ.२८

आथी ऊलटुं, अवचूरियुक्त मुद्रणमां मथाळे "श्रुतधरस्थविरमहर्षिप्रणी
तथा प्रस्तावनामां "आ सूत्रना कर्ता कोण छे. ते ग्रंथकारे बताव्युं नथी तेम अवचूरि
पण खुलासो लख्यो नथी, तेथी कर्यानो निर्णय थई शक्यो नथी". एम जणाव्युं छे
परथी आ सूत्र- ग्रंथना प्रणेता आ देवेन्द्रसूरि नथी तेम समजाय छे.

आथी आ बंन्नेमां साचुं शुं ? तेवो प्रश्न सहेजे ऊगे. जैन साधुसंधमां तो
ग्रंथ देवेन्द्रसूरिकृत होवानुं ज प्रायः प्रचलित छे.

परंतु वास्तवमां एवुं नथी. आ ग्रंथना कर्ता देवेन्द्रसूरि नथी. तेओ तो बृहद्वृ
ज मात्र प्रणेता छे, अने आ वात तेमनी टीकानो प्रथम मंगलश्लोक जोतां ज स्पष्ट
जाय तेम छे. तेमां तेमणे लख्युं छे के :-'सूत्रात् तथाऽऽम्नायतः (शास्त्रो तथा परं
अनुसारे), श्राद्धानां दिनकृत्यसूत्रविवृत्तिं वक्ष्ये सुबोधामहम् (श्राद्धदिनकृत्यसूत्रनी सु
विवृति हुं रचीश.)" आमां क्यांय तेमणे 'हुं आ सूत्र रचीश' एवो निर्देश कर्यो नथी
जोई शकाय छे.

ग्रंथना प्रांते, प्रशस्तिमां पण, तेमणे आवुंज जणाव्युं छे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"चक्रे भव्यावबोधाय संप्रदायात्तथाऽऽगमात् ।
सच्छ्राद्धदिनकृत्यस्य वृत्तिर्देवेन्द्रसूरिभि : ॥"

आमां श्राद्धदिनकृत्यं चक्रे एवी तो वात ज नथी जडती. उपरांत, प्रशस्तिनां ते नां ११ मा तथा १४मां ए बे पद्योमां जे स्त्रीलिंगे निर्देशो छे, ते पण वृत्तिपरक ज छे, के सूत्रपरक.

वळी, मूल सूत्रनी अंतिम ३४२मा पद्यनी बृहद्वृत्तिमां
सिद्धान्ततत्त्वामृतपूरपानात् प्रस्ताव एषोडष्टमको मयोत्त्क :।
उच्चन्द्रकाले शुभसंज्ञिधर्मे, सच्चिन्तनार्थो दिनकृत्यवृत्तौ ॥

एवुं पद्य छे, ते पण देवेन्द्रसूरि मात्र वृत्तिकार छे तेवुं ज पुरवार करे छे. वधुमां, तर प्रमाण पण आ धारणाने पुष्ट करनारुं उपलब्ध थाय छे. मूळ सूत्रना २८मा पद्यनुं पूर्वार्ध म छे.

"थेरी कुरुनरिंदो, सुव्वओ जिणसेहरो ।"

आमां आपेला ४ दृष्टांतो पैकी 'कुरुनरिंद' अने 'जिणसेहर'नां दृष्टांतोनी चर्चा रतां बृहद्वृत्तिकार जणावे छे के – 'सांप्रतंपूजाविषये कुरुचन्द्रकथा, सा चाऽप्रतीतत्वान्न न्यते" (पत्र–४६/२) "जिनशेखरकथा त्वप्रतीता" (पत्र ४९/२)

आ उपरथी स्पष्ट थई जाय छे के सूत्रकार अने वृत्तिकार जुदा छे. जो सूत्र अने त्ति बेयना कर्ता एक ज होय तो तेओ पोताने ज जाणकारी न होय तेवी कथा पोतानी ज ली गाथामां निर्देशे नहीं ज, ते सहेलाईथी समजी शकाय तेवी वात छे.

प्रसंगोपात्त, एक आडवातरूपे अहीं नोंधी शकाय के जिनशेखर(यक्ष)नी कथा वलयमालाकहामां मळे छे, अने ते कथाने अनुरूप अश्वारूढ यक्ष तथा तेना शिरे जिनप्रतिमा वती एक प्राचीन धातुप्रतिमा पण, अमदावादमां भाभा पार्श्वनाथना जिनालयमां विद्यमान छे.

आ ज प्रमाणे कुरुचन्द्रनी कथा पण क्यांक तो लभ्य होवीज जोईए. मात्र देवेन्द्रसूरिजी महाराज समक्ष आ कथाओने वर्णवतां ग्रंथो उपस्थित नहि होय, तेथी णे 'अप्रतीत' होवानुं नोंधी दीधुं हशे.

ए जे होय ते. पण देवेन्द्रसूरिजी स्वयं मात्र वृत्तिकार छे. अने श्राद्धदिनकृत्य- त्रकार नथी, ते तो आ उपरथी सिद्ध थई ज जाय छे.

अवचूरि पण बृहद्वृत्तिने ज अनुसरती जणाय छे. तेमां २८मा पद्यना विवरणमां वचूरिकारे (पत्र–८) जणाव्युं छे के 'कुरुचन्द्रकथा, सा चाप्रतीतत्वान्न तन्यते'। अने नशेखरकथा विशे तो अवचूरिए मौन ज राख्युं छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर गुजरातनी बोलीमां वपराता केटलाक शब्दो

– डॉ. रमेश आ. ओझा

आथर

उत्तर गुजरातमां गधेडा पर जे गोदडी डळी साथे गोठवीने पराठ वडे बांधवामां आवे छे ते गोदडीने 'आथर' कहे छे.

जो.को.मां **आथर**ना अर्थ आ प्रमाणे आपेला छे ..... "घासनो थर (२) पछेडी; पाथरणुं, मोद (३) गधेडा उपर नाखवानी डळी ०ण न. चादर, ओछाड (४) पथारी, बिस्तरो."

बृ.गु.को.मां **आथर**ना अर्थ आ प्रमाणे आपेला छे ...... "पुं. [सं. **आ-स्तर** —> प्रा. **अत्थर**] नीचे पाथरवानुं जाडुं पाथरणुं (२) गधेडा उपर नाखवानी डळी (३) बूंगण, मोद (४) अनाजनी खाणमां अनाज बगडी न जाय ए माटे एनी बाजरानी के बीजी कडबना पूळानो करवामां आवतो थर."

टर्नर क्रमांक १५०५ सं. **आस्तर** (āstara) **आस्तरण** तकियो, पथारी प्रा. **अत्थरय** ओढणुं शब्दो नोंधे छे. क्रमांक १५०७ **आस्तरति** 'आथरवुं', 'पाथरे छे' नोंधे छे. क्रमांक १५०६ मां **आस्तरण** – मरणकाळे घासनी पथारी उपर जे मरवानो छे तेने मूकवामां आवे छे ते – शब्दनी नोंध छे. जैनोमां तेने 'संथारो' कहे छे. टर्नर क्रमांक १३०४२मां नोंधे छे : saṁstaram 'layer of grass or leaves, bed, conch.'

आथर भरवो

इंटो पकवती वेळा बळतण तरीके कोलसो, कोलसी, लाकडां वरियाळी-कपासनी डांखळीनो थर करवामां आवे, एवा पर इंटो खडकवामां आवे एने **आथर भरवो**, **थर भरवो** कहे छे. बृ.गु.को. **आथरो** शब्द नोंधे छे. **आथरो** पुं...... "**आथर** + गु 'ओ' स्वार्थे त. प्र. वासण पकववा माटे बनावेलो कांटा के कूचानो थर."

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओडवो

...र गुजरातमां इंटो पाडतां जरूरी पाणी भरी राखवा माटे जे खाडो करवामां आवे ...तेने ओडवो कहे छे.

...जो.मां आ शब्दनी नोंध नथी. भ.गोमं. अने बृ.गु.को.मां "ओथमां बेसाय तेवो ...डो, चाकडा उपरनो चाक फेरववा माटेनो खाडो" एवो अर्थ आपेलो छे.

...रांत बृ.गु.को.मां **ओडो**[१] नो अर्थ 'पाणी अटकाववानी पाळ' एवो आप्यो छे. ...ळी जो.को.मां **ओडवुं** एवो शब्द 'खाळवुं, रोकवुं' एवो आपेल छे अने **हिं** ...**ोड** नी सरखामणी माटे नोंध्यो छे.

२. व्युत्पत्ति

टर्नर क्रमांक ७७४मां नोंधे छे : वैदिक **अवत** 'कूवो, टांकु.', प्रशिष्ट संस्कृत **अवट** 'भोंयमांनो खाडो' प्राकृत **अवड** > **अवडअ** 'कूवो' **अगड** 'कूवो, हवाडो' भोज **ओड** 'खाडो'.

३. ओडवो

...ुजराती भाषानो अंगविस्तार प्रत्यय **वो** लागतां, **ओडवो** शब्द बने छे, जे प्रत्ययथी ...कशो अर्थभेद थतो नथी के अर्थमां फरक पडतो नथी.

★

छारुं

'**छारुं** ' के '**छार**' शब्द 'इंटवाडानो घसाइने पडेलो भूको' ए अर्थरूपे कोशो नोंधे छे. '**छारवुं**' क्रियापद पण 'इंटवाडानो भूको दबाववो' एवा अर्थमां वपरातुं नोंध्युं छे.

'**छार**' (स्त्री) 'राख' एवो अर्थमां अने तेना उपरथी क्रियापद '**छारवुं**'– 'बाळीने खाख करवुं' एवा अर्थमां कोशो आपे छे. सं. **क्षार**, प्रा. **खार, छार** अने तेना ...परथी भारतीय भाषाओमां शब्दो ऊतरी आव्या छे. टर्नर शब्द क्रमांक ३६७४.

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टेयली

उत्तर गुजरातना महेसाणा जिल्लामां 'टोयली' शब्द मोटेभागे प्रचलित छे, कसली नहि, लोटी क्वचित् ज.

सा.जो.को. अने बृ.श.को. **'टोयलुं'** अने **'टेयली'** बंने शब्दो नोंधे छे. **'टोयलुं'** नो अर्थ 'घी-तेल भरवानी रोजना वपराशनी पहोळा मोंनी लोटी के कसली', पाणी के दूध टेवानुं वासण, तेने **'टोवुं'** पण कहे छे. ज्यारे **'टेयली'** रसोडामां रोजना वपराश माटे घी-तेलने राखवा माटे, साधारण रीते पित्तळनी बेठा मोंनी नीची होय छे. अने आना मूळमां **'टोवुं'** क्रियापद छे, जेनो अर्थ छे 'टींपे टींपे पावुं' आटलुं ज नहि पण 'थोडुं थोडुं वपराशमां लेवुं' आमां सरळता, सुगमता अने करकसरनो भाव रहेलो छे.

'टोयो' 'खेतर के सीमनुं रखेवाळुं करतो रखोपियो' ए जुदो शब्द छे.

★

पराठ

कोशमां **'पराट'** एवुं शब्दरूप आप्युं छे, जेनो अर्थ छे 'गधेडा पर भीडवाना काममां आवती बकराना वाळनी दोरी'. बृ.गु.को.मां एने 'दोरी' ने बदले 'गादी' कही छे ते भूल छे.

उत्तर गुजरातमां महेसाणा जिल्लामां 'ठ'वाळुं शब्दरूप अने एवी वाळ के चींथरांमांथी बनावेली दोरी (दोरडा जेवी) वपराय छे, जे मोटेभागे चप्पट वणेली होय छे, (त्रण सरानी) जेथी प्राणीने खूंचे नहि.

पूरक नोंध : सं. आस्तृत प्रा. अट्ठिय ('ऋ' कारने लीधे दंत्य 'त्थि' ने बदले मूर्धन्य 'ट्ठि'

पर + अट्ठिय = परट्ठियनो अर्थ 'उपर बांधवा माटे जे वपराय छे ते. एवी व्युत्पत्ति करी शकाय. जो के आ एक अटकळ छे.

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वक्तीतीती

टीटोळी : सं. **टिट्टिभ**, प्रा. **टिट्टिह** टिट्टिह + ड के डी = टिटोडो, टिटोडी.

संस्कृत शब्दना मूळमां ए पक्षी जे लाक्षणिक रीते बोले छे ते 'टिटि' शब्दने **प्राणी**वाचक शब्दोमां जोवा मळतो 'भ' प्रत्यय लाग्यो छे. (ऋषभ, गर्दभ, करभ, **कलभ**, डिंडिभ वगेरे)

सौराष्ट्रनी बोलीओमां 'टिटोडी' शब्द छे, महेसाणा जिल्लामां तेने माटे **वक्तीतीती शब्द** प्रचलित छे. देखीती रीते ज ते रवानुकारी छे. नानपणमां वडनगरना शमेळा तळावना बेट पर **वक्तीतीती** इंडां मूके ते जोवा अमे जता. लोकोमां मान्यता हती के **वक्तीतीती** ज्यां इंडां मूके त्यां सुधी वरसादनां पाणीथी तळाव भराय छे.

पंचतंत्रनी वार्ता जाणीती छे के आकाश नीचे पडे तो पोतानां बच्चां दबाइ न जाय ते माटे **टिटोडी** पग ऊंचा राखीने सूवे छे. पंचतंत्रनी बीजी एक कथा पण जाणीती छे. दरियानी भरतीमां कांठे रहेलां **टिटोडी**नां इंडां तणाइ जाय छे त्यारे पक्षीराज गरुड सहित बीजां पक्षीओने बोलावी चांचथी दरियानुं पाणी उलेचवानुं कहे छे. ने दरियो त्यां इंडां पाछां किनारे मूकी आपे छे. अने सुंदरम्नी ने 'दरियाना तीर एक टटळे टिटोडी' आ कथावस्तु परथी रचायेली, जाणीती रचना छे.

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुजरातीमां महाप्राण व्यंजननो अल्पप्राण थवो

– हरिवल्लभ भायाणी

अंत्यस्थाने

१. खनो क (घणुंखरुं अर्धतत्समोमां)

सं. आशिषा > आशिखा > आशका

सं. कालुष्य > कालुक्ख > काळख, काळक

सं. धनुष्य > धनुख > धनक

सं. संतोष >संतोख – संतोक

२. घ नो ग :

प्रा. डुंघअ > डूंघो, डूंगो

सं. स्ताध, ताध > ताग, (अ)थाग

सं. शिखा > सिघा > शघ > शग

सं. सिंह > सिंघ > संग ('अभेसंग' वगेरेमां)

३. छ नो च :

सं. भृगुकच्छ > भरुअच्छ > भरूच

सं. कपिकच्छु > कौवच

४. झ > ज :

प्रा. तुज्झ > तुज

मुज्झ > मुज

सं. संबुध्यते > प्रा. संबुज्झइ > समजे

सं. संध्या > प्रा. संझा > सांज

सं. बाह्य > प्रा. बज्झ > बाज (खेडावाळ)

सं. स्निग्ध > प्रा. सिणिज्झ > सणीजुं

५. ठ नो ट :

सं. काष्ठ > कट्ठ > काठ, काट(माळ)

सं. धृष्ट > धिट्ठ > धीठ, धीट

सं. यष्टि, प्रा. लट्ठि > लाठ, लाट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(प्राकृतमां आ प्रक्रिया प्रा. उट्ट < सं उष्ट्र, प्रा. इट्टा < सं. इष्टा, इष्टका एमां जोवा मळे छे. लोकबोलीमां मोंपाट्य f मोंपाठ)

६. ढ नो ड :

सं. आषाढ : अशाड

सं. अर्ध > प्रा. अड्ढ (जेम के सं. सार्ध परथी साडा (पांच वगेरे). साड (त्रीस),अष्ट > अड्ड > आढ > आड : आडत्रीस < प्रा. अड्ढतीस < सं. अष्टत्रिंशत् वगेरे), अड (सठ),< प्रा. अड्ढसट्ठि, < सं. अष्टषष्टि वगेरे.)

सं. स्तब्ध > प्रा. ठड्ढ > ठंडुं

सं. श्रेढि > प्रा. सेढि, शेड

सं. श्रिष्टि, प्रा. श्रीढि > सीडी

(उष्माक्षर पछीनो महाप्राण लोकबोलीमां अल्पप्राण उच्चारातो होय छे: काष्ट, कनिष्ट, श्रेष्ट, स्वादिष्ट, अवस्ता, आस्ता वगेरे)

७. थ नो त :

सं. शल्यहस्त > प्रा. सेल्लहत्थ > शेलत

सं. वितस्ति > प्रा. विहत्थि > वहेंत

प्रा. नेसत्थी > नेस्ती

८. ध नो द :

सं अर्ध > प्रा. अध्द > अद : अदकचरुं , अच्छेर वगेरेमां

सं. एकार्ध > एकाध > एकाद

सं. सिद्धि > सद (बोरसद वगेरे गामनामोमां)

लोकबोलीमां बाद (बाध), शीद, सराद (श्राद्ध) वगेरे

अनुस्वार पछी :

सं. आसंध > आसंद

सं. दशबंध > दसोंदी

सं. वालबंध > वाळंद

सं. वर्षबंध > वरसोंद

(लोकबोलीमां बंद(बंध)

मध्यवर्ती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छ नो च :
सं कच्छभ, कच्छप > काचबो
ध नो द :
सं. अधिक > अदकुं
भ नो ब :
सं. अभिलाषा > अबळखा
सं. अद्‌भुत > अदबद
सं. अभक्ष्य > प्रा. अभक्ख > अवखो, अबखे
अनुस्वार पछी :
सं. अत्यद्‌भुत > प्रा. अच्चब्भुअ > अचंबो
सं. करंभ > करंबो
सं. कुसुंभ > कसुंबो
सं. डिंभ > डेबुं
(संस्कृतमां लंभ परथी लंब अने डिंभ तेमज डिंब मळे छे.
सं. मल्लस्कंभ > प्रा. मल्लखंभ > मलखंब > मलखम
प्रा. डंभ > डांभ > डाम

★ ★ ★

शब्द चर्चा

अकड

१. **अकड**नुं भारवाचक रूप **अकड, जेम जुद्धो, साच्चे, चोक्कस, नक्खोद, जब्बर** वगेरे

२. **अकडावुं** नामधातु. 'शरीर अकडाई जवुं'. भाववाचक नाम **अकडाई** वगेरे.

३. लाक्षणिक अर्थ 'गर्वीलुं' संस्कृत '**स्तब्ध**' प्रा.'**थड्ड**' '**अक्कड,** दर्प वाळुं'. सरखावो अंग्रेजी **stiff.** (टर्नर क्रमांक १०१३ **आक्कड.**) गुजराती वगेरेमां **अक्कड** छे ते जोतां मूळ तरीके **आक्कड** उपरांत **अक्कड** पण होय. मूळ संस्कृत **आकृत** होवानी संभावना टर्नर रजू करी छे, पण अर्थो वच्चे घणो फरक छे. मूळ अज्ञात मानवुं वधु योग्य छे.

★ ★ ★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकबंध

बंध साथे समस्त बीजा शब्दो : अंकोडाबंध, कटीबंध, (मकान) छोबंध, बेलाबंध, मेडीबंध, घडीबंध, शिखरबंध. उपरांत पाघडीबंध, चमरबंधी, कमरबंध नाम छे.

उपर्युक्त **बंध** वाळा विशेषणात्मक समासोमां मूळे तो **बंधने** बदले **बद्ध** छे. **पछीथी बद्ध** अने **बंध** वच्चे गोटाळो थयो छे. **श्रेणीबद्ध** अने **कटीबद्ध, सिलसिलाबद्ध** (पुरावा)मां **बद्ध** छे ज. **अकबंध,** जेनो **बांधो, बंध** तूटेल नथी, जे अखंड छे ते, साबूत, एमांना अक ना मूळमां सं. **अक्षत,** प्रा. **अक्खअ** होवानी अटकळ टके तेम नथी. वधु संभव मूळ तरीके **एकबद्ध, इकबद्ध** होय एम लागे छे. सरखावो **अकसर** 'मोटेभागे', मूळे अपभ्रंश **इक्कसरि. अकबंध** एटले 'जेनो एक ज बंध छे'. जे अतूट छे, जे एकमां बद्ध छे, जेना भागला नथी पड्या. ते सरखावो हिंदी **अकटक** 'एक टके'.

★ ★ ★

अघरुं

१. अर्थद्रष्टिए सं. अग्राह्य 'ग्रहण करवुं मुश्केल'– एनो आ पर्याय छे. पण ध्वनिद्दष्टिए अग्राह्यमांथी अर्धतत्सम लेखे पण अघरुं निष्पन्न थइ शके तेम नथी.

२. अग्राह्य परथी अग्राज > अगराज 'जे खावा योग्य नथी, जे खावुं निषिद्ध छे' ए शब्द ऊतरी आव्यो छे.

३. सं **अग्रहकं** , अप. **अग्रहउं** > अघ्रउं > अघरुं एवे क्रमे अघरुं बन्यो लागे छे. पूर्ववर्ती हकार साथे जोडाईने महाप्राण बन्यानी प्रक्रिया अर्धतत्सममां जाणीती छे. ग्रहण > घरण, **ग्रहणक** > घरेणुं, **ग्राहक** > घराक, **विग्रह** > वघरो, **संग्रह** > संघरो, **उदग्राहण** > उघराणुं, ब्राह्मण > भ्रामण, बृहस्पतिवार > भ्रेस्पतवार, ग्रहिल्ल > घेलुं, गहन > घेन, मोहड्डुं > मोढुं, गद्दहड > गधेडो वगेरे (जुओ 'व्युत्पत्तिविचार', पृ.१५२,१६०, 'भाषानिमर्श' पृ. १५९)

★ ★ ★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अघरणी

१. अघरणी 'सीमंत' 'पहेलवेलो गर्भ रहे त्यारे सातमे मासे करातो उत्सव' अघरणियात 'अघरणीवाळी स्त्री', बोलीनां रू प अघयणी, अघअणी छे.

२. पंदरमी सदी पहेलांना भीमकृत 'सदयवत्स-वीर-प्रबंधमां' (संपा, मंजुलाल मजमुदार, १९६०) **आघरणी** एवा रूपे आ शब्दनो प्रयोग थयो छे. त्यां प्रसंग एवो छे के एक ब्राह्मणनी वहुना सीमंतना उत्सवमां ज्यारे ते वाजतेगाजते पीयरथी नीकळी होय छे, त्यारे गांडो थयेलो राजहस्ती रस्तामां धसी आवे छे. सौ नासी जाय छे, पण अघरणियातने हाथी कमरथी सूंढ वडे पकडे छे. (पृ.७-९)

आघरणि -अवसरि जयकार (पद्यांक ४४)

आघरणि-अवसरि घरणि आवंती आवासि (पद्यांक ५६)

बीजो प्रयोग ११४३ना लक्ष्मणगणिकृ त प्राकृत कृति 'सुपासनाहचरिय' (संपा. **हरगोविंददास शेठ** , १९१८-१९१९)मां मळे छे.

सं. अग्रहणिका > प्रा. **अग्गहणिया,** बोलीमां प्रचलित रूप अग्रहणिया > अघ्रणी > आघरणी एवो विकासक्रम होय. ग्र + ह > घ्र माटे जुओ अधरुं नीचे टांकेलां उदाहरणो ।

आघरणी उपरथी **अघरणी**, पछी **अघरणियात.**

★ ★ ★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छाल, छीलटुं, छोलवुं

१. छाल प्रयोगो: केळानी छाल. झाडनी छाल. लींबुनी छाल.

(१) सं छद्('ढांकवुं')+ लि.> प्रा. छल्लि 'त्वचा', (जेम आर्द्र > प्रा. अल्ल. पद्र >पल्ल, भद्र > भल्ल) (टर्नर, क्रमांक ५००५) टर्नरआना मूळ तरीके कोई आर्येतर शब्द होवानुं संभवित मान्युं छे ते उपर्युक्त भद्र > भल्ल वगेरे जोतां बराबर नथी. शब्द मूळे भारतीय-आर्य होवा अंगे शंका राखवानुं सहेज पर्ण कारण नथी. छालुं 'नाळियेर वगेरेनुं छोतरुं'. 'लाकडानो वेर'.

(२) छालां पडवां '(हाथमां) छाला पड्यां' - एमानां छालु-नुं मूळ जुदुं ज होय.

(३) छाल 'पीछो, केडो' (छाल छोडवो, छाल मूकवो) एनुं मूळ पण जुदुं होवानुं लागे छे.

(४) खाल. 'चामडी' (खाल उखेडी नाखवी), प्रा. खल्ला - एनी साथे छाल-एने क शो संबंध नथी.
(टर्नर, क्रमांक ३८४८.)

(५) छालक (प्रयोगो:) प्रवाहीनुं छलकावुं ; 'छलकातुं आवे बेडलुं, मलकाती आवे नार:' (ढळवुं : ढळकतुं, फरवुं : फरकवुं, सखु: सरकवुं एम छलवुं : छलकवुं /छलकावुं), छलाछल,छलोछल, छलबलवुं एने छाल साथे कशो संबंध नथी.

(६) छालकुं 'छीछरुं, आछकतुं', 'गधेडापर नाखवानी बे पासियां वाळी गूण अने छालियुं (हिं. छालिया) 'पहोळा मोंनो वाडको', छल्लो (छल्लो भीड्यो) एमनुं मूळ पण जुदुं होवानुं जणाय छे.

२. छीलकुं, छीलटुं (छीलेटुं) 'छोडुं,. छोतरुं' सं. छिद् + ल = छिल्ल > छील एना परथी आख्यातिक धातु छीलवुं (हिं. छीलना) 'छोडां काढवां, छोलवुं'. छील + लधुता वाचक अंगविस्तारक क के ट. छीलकुं, छीलटुं, अर्थना फेरफार माटे सरखावो छेदन > छेअण > छेण, नामधातु छीणवुं अने छेदनिका > छेअणिआ > छीणी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

★ ★ ★

३. छोलवुं. द्रश्य छोल्ल = तक्ष्. छोलां = छालां.

आनो संबंध सं. क्षुद्, क्षुण्ण जेना परथी छूंदवुं थयोछे. एनी साथे छे के केम ते कही न शकाय. छोलाटवुं 'छोल छोल करवुं' सरखावो गोदो > गोदारवुं; धोको > धोकारवुं रंग रंगाटी घोल > घोलाटवुं वगेरे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डांग 'लाठी'

प्रा. डंगा. (टर्नर, क्रमांक ५५२०)

ढोसो 'चूरयुं' बनाववा माटे घउंनो लोटनो बनावातो जाडो खीखरो' नेपाळी ढोसे 'जाडो रोटलो', 'दुस्स' 'पवनथी फूलेलुं'. बंगाळी दुसा जाडियोने आळसु'.

मूळ तमिल दोषै 'आपणे त्यां ढोसा नामे प्रचलित खावानी वानगी'

(टर्नर, क्रमांक ५५९४ दुस्स, 'सोजेलुं, फूलेलुं').

ढकोसलां

(१) आभास, मिथ्या देखाव, (२) कपट व्यवहार.

ढग (ढगलो).

'पुंज' लहंदा ढिंग पं. ढिग्ग, हि. ढीग, बोलीमां घणुं, पुष्कर

सरखावो लहंदा : ढेर 'घणुं'

(टर्नर, क्रमांक ५५८५, ढिंगनी नीचे बंगाळी ५५९९ ढेर नीचे)

ढगरो 'फूलो'

ढेका. ढगरा

सरखावो ढग, ढगलो

ढेकोनी जेम मूळ अर्थ 'उपसेलो भाग' होय.

ढगो 'आखलो' लाक्षणिक 'जाडोपाडो'

पं. ढग्गा; ढग्गी 'गाय'

ढबु (ढबूडी, ढबूलो, ढबूली): 'चींथरानी ढींगली' (बाळ भाषामां)

ए नानी जोडी अने ढींगणी होय.

ढबु (ढब्बु, ढबूवुं) 'अक्कल वगरनुं, मूर्ख' आ अर्थ लाक्षणिक लागे छे. जे जाडो, ढींगणो, ते मूर्ख जड. खूडी 'बेठा घाटनी नानी लोटी, टोचली' टबु, खुडी 'नानी, ढींगणी स्त्री' लाक्षणिक खूडी ठबूडी बंने मूळे एक होय एम लागे छे.

ढब्बु (ढबु)

१. पाई, अधेलो, पैसो, आनो – एनुं ज्यारे चलण हतुं त्यारनो, बे पैसानी किंमतनो ताबांनो जाडो, मोटो सिक्को.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढबुनुं भारदर्शक रूप ढब्बु. रूपांतर : ढबुवो. सरखावो लट्टु लाडु लाडूवो. हिंवी ढबु आ, ढबुवा, हिंदी ढब्बु जाडियो सरखवो लक्स खडधूस

'कथाणव'मां ठेव्वुका. मराठी ढबू, ढब्बू कानडी डब्बु, तेलुगु ढब

३. सरखावो ढबुडो, ढबुलो 'नानो ढींगलो' स्त्री ढबुडी, ढबुली, आ जाडो, ढींगलो, ढींगलो' मूळ अर्थ होय. सिक्कावाचक अर्थ तेना साम्मे.

२. कूमाउनी ढपुवा, ढेपुवा, पंजाबी ढऊआ, ढबुआ हिंदी लढब्बु, ढबुआ ढिबुआ ढेबुआ नेपाळी ढेउआ, ढेबुवा

ढकवुं (१) 'नीचु नमीजवुं, (२) प्रवाहीनुं नीचु पडीजवुं 'नीचु वहीजवुं' 'माथुं ढळीगयुं' 'पाणीनो ढाळ' जमणीबाजुनो ढाळ रस्तानो ढाळ उतरवो 'पहेली ढाळ, वगेरे. रागनो ढाल (पु. स्त्री.) ढोलाव, ढालस ढाळो, धातुना रसनो ढालबंध, (एक) पुस्तकनुं नाम ढालसागर. ढलकवुं 'सहेज नमीजवुं' 'ढळकती ढेल' ढाळीने करवामां आवेलो गड्डो के आकार, लगडी ढढली जवुं (ि ढकढक जवुं)' 'नमी वडवुं'. भीत ढढळी गई. ढळतुं- ढळकती ढेल – ढाळ पु. – ढोळाव ढोळ चढाववो – गीतनी ढाळ स्त्री ढाळो ढढळी गयेलुं 'बीबां', ढाकगर एक ढाकियुं ढोळवुं 'बेसनी विनानुं, ढळी जाय तेवुं वासण

(२) 'पाणी ठळीजवुं' ि घोकाई जवुं, ढोलावुं. प्रेरक ढोकवुं. पंखो ढोलवो ढोल चडाववो 'ओप चढाववो' ढोल – ढाल ढोल- फोड.

प्राकृत ठलइ, ढालइ

बंने अर्थ वाळा नव्य वासीय – आर्य शब्दोमांथी जुओ टर्नर, क्रमांक ५५८१. ढलती, ५५९३ ढुलति, डढाक, ढाक वगेरेनो मूळ तरीके ढल् अने ढोलवुं वगेरेना मूळमां ढुल् छै.

★ ★ ★

ढाढी.

ए नामनी धंधादारी ज्ञाति कृष्णजन्म उजववा भेरी वगाडनार ढाढी नंदयशोदाने त्यां जईने उत्सवमां भाग लेता ढाढी लीला 'वैष्णव मंदिरोमां तेमज राते मळेला वैष्णवोना समूहमां ढाढी अने ढाढण टप्वो खेलता ङ्गश्री कृष्णनी लीलाना पद गाय छे ते

प्रा. ढड्ड 'भेरी' ढड्ड. ढड्डिस ढंढ ढंपोलुं. पोलुं ढंढ ढम ढोलने मांहे पोल टर्नर, क्रमांक ५५७६ ढड्ड 'जाडुं, उपसेलुं, सोजेलुं' ए उपर्युक्त ढड्डनो लाक्षणिक अर्थविस्तार होय.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाकवुं

प्रा. ढक्कइ, ढंकइ 'ढांके छे'

गुड ढांकवुं (नाम ढांकण, ढांकणुं, ढांकणी, ढांको-ढूंबो वगेरेः

(टर्नर, क्रमांक ५५७४)

ढीको, ढींको

'मूढीवाळीने मरातो धब्बो, धुस्तो' समात्य ढीका धूंबी ढींक (ढीका) मारवी

ढेको 'कूलो'.

मूळ अर्थ 'ढोरो' उपसेलो भाग' ढेका ढैया 'खाडाटेकरा' आमां ढैया ए मूळ ढहिया छे हिंदी ढहना (दिवाल वगेरेनुं ढळी पडवुं) ढेका ढकियामां ठकिया 'ढाळ' एटले नीचो भाग खाडो समानार्थे ढगरो, ढींढुनो मूळ अर्थ पण आवो ज।

ढीम, ढीमचुं, ढीमणुं

ढीम न (ढीमचुं) 'पथ्थरनुं मोटुं चोसलुं' लाक्षणिक 'जाडुं मोटुं गड्ढुं' ढीमडुं लाकडानो गड्ढो

ढीम, ढीमुं, ढीमणुं (डु) 'मार लागवाथी अथढावा कुटावाथी, कांईक करडवाथी शरीरनो उपसी आवतो कोई भाग, सोजो'

क्रमांक ५५९१ ढीम्म ढेम्म

पंजाबीमां अर्थ ढेबाळो, हिंदीमां 'लोंदो, ढेखावो,' मराढी ढेया ढेमुस 'शरीर उपर उपसी आवतो सोजो.ढींढु कूलावाळो भाग'

ढीढुं 'फुल वाळो भाग'

टर्नर क्रमांक ५५९९ नीचे टीड्ड, विड्ड, ढींढ, ढेंड्ड, ढेंढ ए अटकळेल मूळ शब्दरूपो नीचे नव्य भारतीय भाषाओमांथी जे शब्दरूपो मुख्यत्वे 'पेट, फांदो' एवो अर्थ धरावे छे.

सरखावो साथे सिंधी ढींढो 'पतंगनो वच्चे वांसनी शीप' गुज ढड्ढो समानार्थ ढेको अने ढगरोनो मूळ अर्थ जोतां ढीढुंनो मूळ अर्थ पण 'उपसेलो भाग, ढोरो' होय एम लागे छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढेबरुं

सरखावो सिंधी ढेबिरो

टर्नरि क्रमांक ५५८० नीचे 'लोंदा' एवा सामान्य अर्थना जे विविध मूळ शब्द आप्या छे तेमां एख आ छे टबुनी नीचे नोंध्युं छे तेम 'जाडुं', 'ढींगणुं' एवी पण अर्थछाया छे.

ढीबवुं उपरथी जे ढीलीने बनावाय छे. ते ढिब्बिर, ढेब्बिर, तेना परथी ढेबरुं ए थैपलु पण कहेवाय छे. जे शेमीने बनावाय छे ते थेपलुं.

ढेसक्षे (केशमां ढेसरो, ढेस्यलो, ढेसको पण आप्या छे.)

'विष्ठानो ढगलो, पादळो'.

कोशमां ढेसं नो 'भाखरो जाडो रोटलो' एवो अर्थ आपीने 'पोदळो, विष्ठा' ए अर्थ लाक्षणिक होवानुं कह्युं छे. पण ढोसो शब्द जोडां ढेसं शब्दरू प शंकास्पद जणाय छे. मने मात्र ढेसडो (बोलनो उच्चार ढेहडो)

टर्नर, क्रमांक ५६०२ ढेस, ढेंस 'लोंदो, ढगलो' एनी नीचे पंजाबी ढेई 'ढगलो' नेपाळी ढिस्को 'टेकरो' वगेरे आपेल छे.

ढोल (ढोलकुं ढोलक) (ढोली, ढोलीडो वगाडनार)

प्रा. ढोल्ल (टर्नर, क्रमांक ५६०८ ठोल, ठोल्ल)

दोनीडा धडूकया लाडी चालो अपणे घेर रे मही सागरने आर ढोल वागे छे.

ढोल ढूम ढम्या ढोल ढमके छे. ढोलनगारा ढमढाल, मांहे पोल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Hindi मोटा

1. H. मोटा 'fat'; G. मोटु 'big, elder'. K. L. P. Ku. A. B. Or G. have corresponding forms with the meaning 'big', 'fat.

(Turner, 10187(11))

मोड्डियार 'boyish, laddie' (मोड्ड comparative यर < Sk. ०तर is attested from a tenth century text.

(Śodh aur Svādhyāy, p. 185)

2. H. मोट, मोटरी 'bundle'. (G. गोटमोट 'bundled up')
According to Turner मोड्ड < मोटा belongs to the defecteve group of words while मोट 'bundle' is conneted with Sk. मूत etc. 'basket', 'bundle', 'sack'

(Turner, 10233 (3), (6), (7),)

3. I think *मोड्ड 'bundle, sack' is the original word. *मोड्ड is its transform due to the tendency to change a post-nasal ०उ to ०ओ ('Some Topics in the Development of OIA, MIA, NIA', P. 75).This मुड्ड is the same as मोड्ड. A fat, big child or boy is referred to as 'a bundle' in light, humorous discourse. (metaphorically). Compare श्लक्ष्ण 'the tiny one > G. नहानुं, M. लहान etc. 'smalller, younger'

(Turner, 12732)

Hindi छोटा

1. छोटा 'small', 'younger'.
. मोटा and छोटा, are contrasting words.

(Turner, 5071)

2. Sk. शाव 'young of an animal', Pk. 'boy, child', Sk. शावक

(Turner, 12417)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

3. Pali छाप (छापक) 'young of an animal'. It is I think derived from Sk शाव. Hemacandra has noted Pk. छाव <Sk. शाव, Pk.छमी < Sk. शमी. For other cases of Sk. श->. छ-. see Pischel, para 211. But Turner says relationship between शाव and छाप is unclear.

(Turner, 5026)

4. Inspite of the phonological problem I find it difficult to regard the element छो० in छोक, छोक्क, छोक्कर (Turner, 5069, 5070) as unrelated to शाव. छोक्क possibly derives from an expressive/ emphatic form < छवक्क < शावक्क < शावक. (छोक्कर purhaps originated from छोक्करूव > Guj. छोकरु; Cf. डिक्करूवइ खद्धइं मक्कडेहिं ,).

5. Cf. Ap. डिक्करूव' male child' Accordingly I think छो० in छोड़ (># छोटा etc.; Turner, 5071) is the same as छो० derived from शाव (> छाव.). It is extended with ०ड़०
with Sk. रूप (with the meaning -shade of प्राशस्त्य) and its instanecs see.my Vagvyaparcin Gujarati, 1954, p. 229-231.

(For the stem-enlarging, diminutine, -ट- see Bhayani, थोडोक व्याकरण विचार, 3rd edition, p. 114-120). (Instances of Guj. nouns चोरटो, जोगटो, भामटो; adjectives in M. खारट, तीखट, तांबट) .

G. गोटो, H पोट (f.) , मोट (f.)

1. G. गोटो 'something round, ball-like, nosegay', गोटी 'small ball'. 'confusion, disorder, mixup' (= गोटाळो, H. घोटाला scam). Sk. गुटिका.

H. गुट्ट 'mass'.

(Turner, 4182, 4271)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2. H. पोट, G पोटलुं etc. 'bundle, sack, bag'. Sk .पुट, पुटक

(Turner, 8253, 8396)

3. H. मोट, मोटरी 'bundle', G. गोटमोट 'bundled up'.

G. एंट

G. एंट 'pride', 'insistance', 'uncompromising vow or promise', हठाग्रह, टेक.

Verb एंटवुं 'to be insistent or proud'.

This is from Hindi. H. ऐंठ 'pride', एंटन 'winding, straining', ऐंठना 'to turn and twist', 'to pull, 'to express proudness', ऐंठू 'proud'.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org